ईश्वर दर्शन

Philosophy of God



लेखक—
हिम्मत राय गुप्त
सहारनपुर (उत्तरप्रदेश)

प्रकाशक—
स्वामी शिवानन्द सरस्वती
शिव आश्रम जस्सा राम रोड, हरिद्वार

१ अधर्माभिभावात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः॥

ुद्धि बुद्धि और कर्म शुद्धि के बिना जीवन समाज के
ाल्प, वाणिज्य, कृषि, राजनीति, तथा देश के किसी
भी विभाग की उन्नति होना सर्वथा असम्भव है।

ईश्वर दर्शन

Philosophy of God

लेखक—

हिम्मत राय गुप्त

सहारनपुर (उत्तरप्रदेश)

प्रकाशक—

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

शिव आश्रम जस्सा राम रोड, हरिद्वार

म बार १०००

मूल्य १।) सवा रुपया

मुद्रक
अर्जेन्ट प्रिंटिंग प्रेस,
सहारनपुर

पुस्तक मिलने का पता—
लेखक—हिम्मतराय गुप्त मौ० रामनगर, सहारनपुर (यू०पी०)
प्रकाशक—स्वामी शिवानन्द सरस्वती, शिव आश्रम,
जस्साराम रोड हरिद्वार।

दो शब्द

इससे पूर्व मैंने "विश्व धर्म परिचय" नामी एक पुस्तक ६३५ पृष्ठों की लिखी थी, उस में लगभग सभी प्रचलित धर्मों, मजहबों और मत मतान्तरों के इतिहास तथा सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है, ईश्वर की महान कृपा से बिना किसी विशेष प्रचार या विज्ञापन आदि के वह पुस्तक काफी पसंद की गई। इस देश के सभी प्रान्तों के अतिरिक्त इस की काफी प्रतिलिपियां, अफरीका, मॉरीसश और नैपाल आदि प्रदेशों में भी मंगाई गईं। कुछ गुरूकुलों और पाठशालाओं में वह पुस्तक कोर्स में भी सम्मिलित कर दी गई है। अब उस ग्रन्थ की थोड़ी सी प्रतिलिपियां शेष रह गई हैं, किन्तु मांग बराबर आती रहती हैं। बहुत से विद्वानों ने इस पुस्तक की सराहना में मेरे पास अपनी अनमोल सम्मतियां भेजी हैं. मैं उन सभी महानुभावों का हार्दिक धन्यवाद करता हूं।

देश में नास्तिक विचार धारा और उसके दुष्परिणामों के फैलाव को देख कर मेरे हृदय में बार बार यह प्रश्न उत्पन्न होता रहा, कि हमारे देश के ईश्वर वादी विद्वान्, आचार्य और दार्शनिक आदि इस ओर अपना ध्यान आखिर क्यों नहीं देते ? वह क्यों इसकी रोक थाम के लिए अपना कोई ठोस कदम नहीं उठाते ? यदि विद्वान लोग ही इस प्रकार कुछ अधिक समय तक चुप लगाये बैठे रहे तो फिर एक दिन वह आ सकता है कि इस धर्म परायण देश की मान मर्यादा तथा धर्म, कर्म सब कुछ नष्ट भ्रष्ट होकर देश में वर्ण शंकर उत्पन्न हो जाएगा और लोग स्वार्थी, लालची, कपटी, मिथ्यावादी और व्यभिचारी आदि बनते चले जायेंगे।

आज से पूर्व भी हमारे देश में बृहस्पति आचार्य ने नास्तिक विचारधारा का प्रचार आरम्भ किया था इसका परिणाम वही होने लगा था, जो नास्तिक विचारधारा का परिणाम बहुधा हुआ करता है। लोग परलोक का ध्यान छोड़ कर लोक मायाजाल में बुरी तरह लिप्त होकर स्वार्थ आदि दुर्गुणों को

अपनाने लगे थे। उस समय के आस्तिक विद्वान नास्तिक विचार धारा के बुरे परिणामों को देख कर भला कब चुप रह सकते थे! वह तुरन्त मैदान में आये। उन्होंने नास्तिकों को ललकारा और उनकी विचारधारा को अपनी अकाट्य युक्तियों से धज्जियां उड़ाते हुए उस पर ऐसा कसकर बन्द लगाया कि फिर उसे आजतक इस देश में पनपने का अवसर प्राप्त न हो सका। आज नास्तिक विचार धारा को जो पनपने का अवसर प्राप्त हो रहा है, यह पाठक गण स्वयं ही जानते होंगे।

जब मैंने देखा कि विद्वान लोग न जाने किस कारण आगे बढ़ने का नाम ही नहीं लेते तो फिर मैंने सोचा कि इस पर मैं ही कुछ लिखूं। किन्तु साथ ही यह विचार उत्पन्न हुआ कि ईश्वर विषय, गम्भीर, गहन और जटिल विषय है। इस पर विद्वान लोग ही भली भांति प्रकाश डाल सकते हैं। मुझ जैसा अयोग्य व्यक्ति इस विषय पर कुछ अधिक नहीं लिख सकता। मुझ जैसे अयोग्य व्यक्ति से बहुत सी त्रुटिएं होने की सम्भावना हो सकती है। चुनाचे मैंने त्रुटियों की ओर अधिक ध्यान न देते हुए अपने टूटे फूटे विचार, टूटी फूटी किन्तु सरल भाषा में थोड़ा बहुत लिखने का निश्चय कर ही लिया।

मुझ से इस पुस्तक के लिखने में त्रुटियां तो हुई ही होंगी, किन्तु मुझे आशा है कि विद्वान लोग उन त्रुटियों से मुझे क्षमा करते हुए मुझे कुछ न कुछ लिखने का साहस प्रदान करेंगे। वास्तव में यह पुस्तक विशेष रूप से जनसाधारण के लिए लिखी गई है, ताकि वह आस्तिक व नास्तिक विचारधारा से कुछ न कुछ जानकारी प्राप्त कर सकें।

यदि यह पुस्तक भी मेरी लिखी पुस्तक "विश्व धर्म परिचय' की भांति अपनाई गई तो इससे मेरा अधिक साहस बढ़ जायेगा। और हो सकता है कि भविष्य में भी किसी अन्य विशेष विषय पर भी कुछ लिखने का प्रयत्न कर सकूं? मैंने अपनी दोनों पुस्तकें शिव आश्रम हरिद्वार के अर्पित करदी हैं। इन दोनों पुस्तकों की बिक्री से जो लाभ होगा वह शिव आश्रम की ओर से धर्म प्रचार में ही व्यय किया जायेगा। मैं उस लाभ में से कुछ भी न लेने का प्रण कर चुका हूँ।

प्रस्तावना

आज संसार में ईश्वर के होने न होने का प्रयत्न बहुत जोर से चल रहा है। विज्ञान और साम्यवाद के नाम पर लोग ईश्वर के अस्तित्व के विरोध में बहुत प्रचार कर रहे हैं। ईश्वर है तो उसे कोई हटा नहीं सकता और नहीं है तो उसको कोई स्थापित नहीं कर सकता। यह तो तत्व ज्ञान का विषय है। संसार में जड़त्व और चेतनत्व दोनों प्रत्यक्ष होते जा रहे हैं तो इस विश्व ब्रह्मांड में एक चेतन सत्ता समायी हुई क्यों न मानी जाये, जबकि उसकी रचना, नियम और गति दीख रही है? ईश्वर के मानने से सहस्रों बुराइयों से बचते रहते हैं। अन्याय और अत्याचार करने से आस्तिकता ने मनुष्य को रोका है, यह इतिहास सिद्ध है ही। ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव को गलत मानने से अन्याय और अत्याचार अवश्य होता है। इसीलिये सत्यासत्य शुद्ध ब्रह्मज्ञान का प्रचार करना आवश्यक हो जाता है।

जनता में बढ़ता हुआ गलत ज्ञान, मिथ्या धारणाओं का यह प्रभाव हुआ है, कि बड़े, बड़े कहलाने वालों का चरित्र गिरता जा रहा है। उद्दण्डता और अभद्रता, उपद्रव और हत्यायें बढ़ रही हैं। ईश्वर चर्चा नम्रता, कल्याण, शान्ति और अहिंसा के भाव जगाती है। अतः देश की जनता को ऐसे साहित्य की बहुत आवश्यकता है जो सही सही ब्रह्म ज्ञान को फैलावे।

ब्रह्म ज्ञान और आध्यात्मिकता दार्शनिक विषय है। कठिन और गम्भीर चर्चा है। इ लिये साधारण बुद्धि के लोग या व्यसनग्रस्त जन या विलासी लोग इससे दूर रहना चाहते हैं। पर इसी विषय को इस पुस्तक में प्रश्नोत्तर रूप में बहुत सरल भाषा में गहरे तर्कों के द्वारा समझाया गया है। ईश्वर के

अस्तित्व के विषय में अकाट्य युक्तियां दी गयी हैं। विद्वानों के अनुभव प्रस्तुत किये गये हैं। लेखक ने प्रगाढ़ अध्ययन और बहुकालीन चिंतन के बाद यह पुस्तक लिखी है।. अपने जीवन में अनेक अनुभव करके लेखक यह पुस्तक पाठकों को पेश कर रहा है।

मैं श्री हिम्मतराय जी (लेखक) का बहुत धन्यवाद करता हूं कि उन्होंने ऐसी सुन्दर और उपयोगी पुस्तक तैयार की है। इस पुस्तक से उनका अपना कोई लाभ सांसारिक नहीं है। केवल लोक में फैले हुए एक अज्ञान (नास्तिकता) को दूर करना ही उनका उद्देश्य है।

आशा है कि जनता इस पुस्तक की कदर इसी प्रकार करेगी जैसी उनकी पहली पुस्तक विश्व धर्म परिचय की की है।

यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है और युक्तियुक्त है। मैं पुस्तक का प्रचार चाहता हूँ।

बिहारीलाल शास्त्री
सुभाषनगर, बरेली

का० शु० १० वि० १६१७



भजन

तर्ज – (रघुपति राघव राजा राम)

अक्षर ओ३म् अनादि अपार।
जगत पिता सबके आधार॥
धरती तल में नभ मंडल में।
मस्त पवन में पावक, जल में॥
व्यापक हो तुम हे! करतार।
जगत पिता सबके आधार॥१॥

अद्भुत माया, पार न पाया।
निराकार निर्लेप अकाया॥
रचे जगत कैसे साकार।
जगत पिता सबके आधार॥२॥

सुर मुनि साधु संत कवि गायक।
कोयल मोर पपीहा चातक॥
सब गुण गाते बारम्बार।
जगत पिता सब के आधार॥३॥

समय समय घन जल बरसाते।
वन उपवन चहुं दिशि लहराते॥
सुख मय हो जाता संसार।
जगत पिता सबके आधार॥४॥

कोश तुम्हारा खुला निरन्तर।
पाते भोजन कीड़ी कुञ्जर॥
तुम सम कौन दयालु उदार।
जगत पिता सबके आधार॥५॥

सबको कर्मों का फल देते ।
रिश्वत तुम न किसी से लेते ॥
शुद्ध न्याय तेरा सरकार ।
जगत पिता सबके आधार ॥६॥

पावन वेदामृत की धारा ।
की प्रदान ऋषियों के द्वारा ॥
हैं तेरे अगणित उपकार ।
जगत पिता सबके आधार ॥७॥

ज्ञान प्रकाश हृदय में करदो ।
भक्ति भावना उर में भर दो ॥
विनय यही है बारम्बार ।
जगत पिता सबके आधार ॥८॥





लेखक—हिम्मत राय गुप्त



प्रकाशकः—

स्वामी शिवानन्द सरस्वती



प्रथम खण्ड

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् ।
भर्गो देवस्य धीमहि धियो नः प्रचोदयात् ॥

यह है गायत्री मन्त्र। यही वह मन्त्र है कि जिसके जाप या गान करने से मनुष्य का उद्धार होजाता है। यही है वह मन्त्र जिसका मन को एकाग्र तथा चित्त को शांत करके जाप करने से मनुष्य कुमार्ग छोड़कर सन्मार्ग की ओर चल पड़ता है। इसी मन्त्र को गुरू मन्त्र भी कहते हैं।

इस मन्त्र की महिमा का वेद और शास्त्रों में बहुत वर्णन किया गया है। इस मन्त्र के यूं तो गम्भीर अर्थ है, किन्तु भाव अर्थ इस प्रकार है:—

ऐ परम पिता परमेश्वर! आप अपनी असीम कृपा से हमारी सदा रक्षा करते हैं। आप हमारे जीवन उद्धार हैं। आप दुःख-विनाशक हैं। आप आनन्ददायक हैं। आप सवत्र सुप्रतिष्ठत और सुप्रसिद्ध हैं। आप सर्वोत्तम शुद्ध-पवित्र और ज्ञान-स्वरूप हैं। आपसे ही यह तमाम ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ है। आप ही सकल शुभ गुणों की खान हैं और सबके जनक हैं। हम आपके सुन्दर रूप तथा पवित्र तेज का निश्चय करके ध्यान करते हैं और अपने को आपके समर्पण करते हैं। आप हमें सद्-बुद्धि प्रदान करें

और आप हमें सदा बुरे कर्मों तथा कुमार्ग से अलग रखकर उत्तम कर्मों तथा सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने की कृपा करें।

इस मन्त्र में परमात्मा से सद्-बुद्धि की याचना की गई हैं। वास्तव में मनुष्य शरीर में बुद्धि का बड़ा महत्व है। सद्-बुद्धि ही वह शक्ति है जो सत्य, असत्य, सम्भव, असम्भव और ज्ञान, अज्ञान का निश्चय कराती हैं। बुद्धि के प्रयोग से ही मनुष्य प्राकृतिक नियमों की खोज करके आश्चर्यजनक आविष्कार करता है। बुद्धि पूर्वक किए हुए सभी कार्य सफल होते हैं।

यह एक मानी हुई बात है कि जल से शरीर, सत्य से मन, विद्या, तप और सत्य से जीवात्मा शुद्ध होता है तथा ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है। बुद्धि और ज्ञान एक ही वस्तु के दो विभाग हैं। इसीलिये तो कहा गया है कि सच्चा धर्म वही है जो बुद्धि-पूर्वक हो। उसी को ग्रहण करने से जीवन सफल होने की आशा हो सकती है।

मनुष्य शरीरः——

देखा आपने मनुष्य शरीर कितना सुन्दर और विचित्र निर्माण किया गया है। मनुष्य शरीर को ऋषि-भूमि, देवपुरी और ब्रह्मपुरी की संज्ञा दी जाती है। ऋषि-भूमि इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इसमें सात ऋषि अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रियां छटा मन और सातवीं बुद्धि निवास करती हैं। देवपुरी इस कारण नाम रक्खा है, क्योंकि इसमें आठ चक्र और नौ द्वार वाली देवता की पुरी है। ब्रह्मपुरी की इसलिए संज्ञा दी जाती है क्योंकि मनुष्य शरीर ही वह शरीर है जिसमें ब्रह्म के दर्शन होते हैं और जीवात्मा अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। मनुष्य शरीर का मिलना अति दुर्लभ है। जिस भाग्यशाली जीवात्मा को मनुष्य

शरीर मिल गया तो समझ लो एक गहरी नदी पार करने के लिए एक सुन्दर नौका मिल गई।

मनुष्य आयुः—

यह तो आप अपनी आँखों से देखते ही रहते हैं कि जीवन का प्रत्येक स्वांस बूंद २ करके वर्षा के समान बरसता ही रहता है। या यूं समझ लीजिए कि जैसे फूटे घड़े में से जल की बूंदें गिरती रहती हैं, ऐसे ही मनुष्य की आयु भी प्रति क्षण घटती रहती है। फिर एक वह घड़ी आजाती है कि जब घड़ा पानी से बिल्कुल खाली होजाता है। या यूं कहिए कि शरीर में सांस की बूंद शेष नहीं रहती।

याद रखिए जिस यौवन का हम गौरव करते हैं वह जल तरंग के समान क्षण-भंगुर है। यौवन के समीप बुढ़ापा सिंहनी के समान घात में लगा हुआ है। मृत्यु का कोई भरोसा नहीं है। न जाने कब, कहां और कैसे आजाए। मृत्यु हर समय सब पर नाचती ही रहती है। माया भी छाया के समान चंचल है। इस पर भी कोई भरोसा नहीं किया जा सकता। फिर न जाने हम यह सब कुछ प्रति दिन अपनी आंखों से देखते हुए भी सदा जीने की इच्छा क्यों करते हैं और मृत्यु को भूल कर पाप कर्म करने की ओर क्यों झुके रहते हैं?

मनुष्य जीवनः—

वास्तव में मनुष्य जीवन ही वह जीवन है जिसमें मनुष्य को ऊपर उठकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होता है। शेष सब योनियां तो भोग-योनियां हैं। उनमें ऊपर उठने और लक्ष्य प्राप्त करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

जो भाई बहिन इस शरीर को ही सब कुछ समझ कर सदा इसके बेजा बनाव सिंगार की चिन्ता में लगे रहते हैं, सम्भव है वह यह नहीं जानते कि शरीर का मूल्य तभी तक है कि जब तक इसमें जीवात्मा विराजमान है। इधर शरीर से जीवात्मा निकला उधर रोना पीटना आरम्भ हुआ। उस समय उस सुन्दर गोरे और सजे हुए शरीर से कोई प्यार नहीं करता। सब यही कहने लगते हैं कि अब इसमें क्या रक्खा है जो पंछी इसमें निवास करता था वह तो उड़ गया। अब तो यह केवल मिट्टी पड़ी है। इस मिट्टी को शीघ्र ठिकाने लगाना ही अच्छा है। देर करने से इसमें दुर्गन्ध उत्पन्न हो जायेगी और फिर कोई भी इसके निकट खड़ा होना पसन्द नहीं करेगा।

इसलिए याद रखिए कि मनुष्य जीवन पाकर यदि ईश्वर आज्ञा का पालन न किया और यूं ही जीवन बिताते रहे तो यह जीवन बेकार ही सिद्ध होगा। जो मनुष्य धर्मानुसार अपने जीवन को नहीं बिताते वे अन्त में ठोकरें ही खाते हैं। दुर्भागी हैं वे मनुष्य जो जोंको की भांति गाय के थनों के निकट रहकर गन्दा लहू पीती हैं और दूध जैसे अमृत को छोड़ देती हैं।

जो मनुष्य खाओ, पीओ और आनन्द करो। Eat, drink and be merry का पाठ पढ़ाते हैं वे स्वयं पापी हैं और अन्य को भी पाप कर्मों में फंसाने का प्रयत्न करते हैं। वास्तव में यदि ध्यान पूर्वक देखा जाये तो ईश्वर ने मनुष्य जीवन केवल भोगों के भोग के लिए ही नहीं दिया। यह जीवन तो भोगों के दाता परम पिता परमेश्वर को जानने, उसकी आज्ञा पर चलकर शुभ कर्मों द्वारा जीवन को उच्च और सफल बनाकर परमानन्द अर्थात् मुक्ति प्राप्त करने के लिए दिया है। मुक्ति प्राप्त करने में ही जीवात्मा को आनन्द मिलता है जो सांसारिक सुखों से लखोखा गुणा अधिक हैं।

मनुष्य स्वभावः--

मनुष्य स्वभाव से निर्बल होता है। विषय का सुख इंद्रियों को अनुभव होता है। इसालिए इंद्रियां और मन विषय के सुख को प्राप्त करने के लिए जीवात्मा को प्राकृतिक विषयों में लगाने के लिए प्रेरित करते रहते हैं। यही कारण है कि जीवात्मा अशुभ कर्मों की ओर शीघ्र झुक जाता है। पाप का डंक सुन्दर स्त्री की भांति जीवात्मा में प्रवेश कर जाता है, इसलिए जीवात्मा विषयों में फंस कर पाप कर्म कर बैठता है। इद्रियों को पाप का जायका सुहाना. लुभावना और मनभावना प्रतीत होता है। उसका दृश्य सुन्दर और चाल ऐसी टेढ़ी ज्ञात होती है कि यह अपना प्रभाव बड़े २ तपस्वियों और महात्माओं पर भी कर देता है। पाप का स्वरूप चमकीला और रंगीला देखकर ही ता जीवात्मा उसमें आसानी से फंस जाता है। किन्तु ज्ञानी लोग जो बचना चाहते हैं वह बचने का प्रयत्न कर ही लेते हैं।

पाप कर्म से बचने का उपायः--

(१) मनुष्य को चाहिए कि वह मानसिक पाप-कर्म से सदा बचा रहे। पाप-कर्म की जड़ मन है। राजा पाप-कर्म का दण्ड शरीर को दे सकता है, मन को नहीं। ईश्वर मन से भी सूक्ष्म है और वह अन्तर्यामी हैं। इसलिए वह हमारे मन के अच्छे और बुरे भाव देखता रहता है, और उन्हीं भाव के आधार पर सुख दुःख देता है।

(२) चरित्रवान और सत् पुरुषों की संगति करने से जीवन शुद्ध और ज्ञान-विज्ञान में वृद्धि होकर पाप कर्मों से बचने की आशा हो जाती है।

दुर्जन मनुष्य चाहे कितना ही विद्वान क्यों न हो, किन्तु उसके बुरे और मलिन विचार बने ही रहते हैं। ऐसे दुर्जन मनुष्य परलोक का ध्यान न करते हुए लौकिक पदार्थों की प्राप्ति में ही आयु भर डूबे रहते हैं। ऐसे दुर्जन विद्वानों की संगति से कोई सुधार नहीं हो सकता।

(३) इद्रियों और मन को वश में कर लेनें से पाप कर्म करने की सम्भावना नहीं रहती। जो जीवात्मा इंद्रियों तथा मन के इशारे पर नाचने लगता है, वह पाप कर्म से कदाचित् नहीं बच सकता।

(४) जो मनुष्य बुद्धि पूर्वक ऐसा निश्चय कर लेता है कि ईश्वर सर्व व्यापक अन्तर्यामी, न्यायकारी और सर्व शक्तिमान् है और वह हमारे प्रत्येक कार्य और मन के भावों को देखता रहता है। हम उससे कोई कार्य छिपाकर नहीं कर सकते। वह सबको उनके अच्छे या बुरे कर्मों का अपने अटल न्याय द्वारा दुःख सुख अवश्य देता है। ऐसी धारणा बना लेने से मनुष्य पाप कर्म से बच जाता है।

(५) ये भिन्न-भिन्न प्रकार की अच्छी और बुरी योनियां और मनुष्यों की अच्छी या बुरी अवस्थायें, ये दुःख सुख ये लंगड़े लूले और कोढ़ी अपाहिज आदि किसी बनाने वाले ने बिना किसी कारण के तो उत्पन्न नहीं किए होंगे और न ही ये समस्त बुरी अवस्थायें स्वयं उत्पन्न हुई होंगी। इन अच्छी बुरी योनियों और अवस्थाओं का कोई न कोई कारण अवश्य होगा। तभी तो ये भिन्न २ प्रकार की अच्छी बुरी और गन्दी योनियां तथा अवस्थायें उत्पन्न हुई हैं। जो मनुष्य इस प्रकार चिन्तन करते हुए अपनी भावना बना लेता है, तो उसे बरबस होकर यह मानना ही पड़ता है कि ये सब योनियां और अवस्थायें जीवात्मा

के अपने ही शुभ और अशुभ कर्मों का परिणाम है फिर वह पाप कर्मों से बच सकता है।

(६) जो मनुष्य आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को भली भांति समझ कर निश्चय कर लेता है, तो उस मनुष्य के हृदय में पाप कर्म करने से घृणा उत्पन्न हो जाती है।

(७) पिछले किए हुए पाप कर्मों को याद करके पश्चाताप करना और भविष्य में पाप कर्म न करने की सच्चे हृदय से प्रतिज्ञा करने का नाम प्रायश्चित् है। प्रायश्चित् एक प्रबल शक्ति है, इससे मानसिक कर्म शुद्ध होकर बल प्राप्त होता है। प्रायश्चित् करने से मनुष्य भविष्य में पाप कर्म से बच जाता है और फिर वह उन्नति की ओर चल पड़ता है। प्रायश्चित् का व्रत शुद्धि का मूल्य है। यह एक ऐसा व्रत है कि जिसका अनुष्ठान मनुष्य को धर्मात्मा बनाकर हृदय में शांति उत्पन्न कर देता है।

यह बात याद रखनी चाहिए कि मनुष्य के किए हुए पाप कर्म किसी भी विधि या किसी की सिफारिश (शफाअत) से क्षमा नहीं किए जाते। उनका फल तो अवश्य भोगना ही पड़ता है। जो मनुष्य किसी की आड़ लेकर पाप कर्मों के क्षमा होजाने पर विश्वास रखते हैं वे पाप कर्म से नहीं बच सकते।

ये बात भली भांति समझकर हृदय में बैठा लेनी चाहिए कि 'दया' और 'न्याय' में बहुत बड़ा अन्तर है। दया के लिए कर्म करने की आवश्यकता नहीं हुआ करती। न्याय का आधार कर्मों पर होता है। दया का प्रयोजन यह कदाचित् नहीं होता कि पाप कर्म क्षमा कर दिए जायें। पाप कर्मों का दया के नाम पर क्षमा कर देना न्याय नहीं अन्याय है।

जीवन सुखी और सफल कैसे बनाया जा सकता है ?

हम संसार में रहते हुए ईश्वरी आज्ञाओं का पालन करते हुए अपना जीवन सुखी व सफल बना सकते हैं। हम संसार के कार्य भी भली भांति चला सकते हैं और ईश्वरी आज्ञाओं का भी पालन कर सकते हैं। ईश्वरी आज्ञाओं का पालन करने के लिए हमें ईश्वर भक्ति द्वारा तैयारी करनी पड़ती है। मन और चित्त लगाकर परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, गहरे सम्बन्ध, दृढ़ विश्वास और अटूट श्रद्धा से पूजा करने अर्थात् मन, वचन और कर्म से परमात्मा की आज्ञा पालन करने का नाम ईश्वर भक्ति है। भक्ति में शक्ति है। भक्ति को प्रेम के नाम से भी पुकार सकते हैं। ईश्वर भक्ति के लिए घरबार छोड़कर इधर उधर भाग दौड़ करने की आवश्यकता नहीं है। गृहस्थ में रहते हुए और सांसारिक कार्य चलाते हुए भी ईश्वर भक्ति भली प्रकार हो सकती है।

ईश्वर भक्ति दो प्रकार की है। एक तो दूसरों पर दया करने, प्रीति पूर्वक व्यवहार करने, निष्काम कर्म करने तथा अन्य शुभ कार्य आदि से, दूसरे ईश्वर का चिन्तन करने से। ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में विराजमान है उसे अपने हृदय में देख लो (Know thy-self) ईश्वर मिल जायेगा और जीवन सफल हो जायेगा।

किन्तु यह याद रहे कि केवल ईश्वर भक्ति अर्थात् प्रार्थना से कुछ नहीं होता। ईश्वर भक्ति से पहले पहलवान की भांति तैयारी करनी पड़ती है अपने को यम और नियम से बांधना पड़ता है। फिर मन, वचन और कर्म से ईश्वर को प्रसन्न करना होता है। यह बात तो साधारण है कि जो व्यक्ति जिसकी

भक्ति या चिन्तन या संगति करता है वह उसी के रंग में रंग जाता है। जो व्यक्ति जिसका अधिक ध्यान करता है वह उसी का स्वभाव अपना लेता है, जैसे लोहा आग में रखने से पहले गर्म फिर लाल और फिर आग ही का रूप धारण कर लेता है।

ईश्वर भक्ति हमें इसलिए करनी चाहिए, क्योंकि ईश्वर पापनाशक है, चेतन स्वरूप है, सुखों का दाता है, सर्व श्रेष्ठ, शुध, बुध, सच्चिदानन्द स्वरूप और सर्व शक्तिमान अर्थात् सर्व शक्तियों का केन्द्र है। जीवन सफल या सुखी केवल ईश्वर भक्ति से ही हो सकता है, क्योंकि शक्ति वहीं से मिलती है, जहां शक्ति होती है। चेतन शक्ति की भक्ति और उपासना से ही बल और बुद्धि प्राप्त होती है। जो मनुष्य सच्चे हृदय से मन को एकाग्र करके परमेश्वर की भक्ति करता है, वह परमानन्द अर्थात् मुक्ति प्राप्ति का भागी होजाता है।

जो लोग मरकर इस संसार को छोड़ गए। जिनका अब संसार में कोई अस्तित्व नहीं है, उनकी क़ब्रों मूर्तियों तथा समाधों पर जाकर माथे रगड़ने और गिड़गिड़ाने से कोई लाभ नहीं हो सकता। हां, लाभ हो सकता है निष्काम कर्म करने से, भूखों, कंगालों, बीमारों, अपाहजों, यतीमों और विधवाओं आदि की अन्न, वस्त्र और औषधी आदि से सेवा करने से तथा दुखियों के आंसू पोंछने से। जो इस प्रकार ईश्वरी आज्ञा का पालन करता है उसी से ईश्वर प्रसन्न होता है।

तनिक और ध्यान दीजिए! हमारे वस्त्र और शरीर पर नित मैल लग जाता है। हम अपने वस्त्र धोकर और शरीर नहा कर शुद्ध बनाते हैं। किन्तु अगले दिन फिर उसी प्रकार मैल लग जाता है। हम फिर वस्त्र और शरीर को शुद्ध बनाते हैं। इसी

प्रकार जीवात्मा प्रकृति के सम्बन्ध से सदैव अज्ञान और पाप का मैल प्राप्त करता रहता है। उस पाप और अज्ञान के मैल को दूर करने के लिए परम पिता परमेश्वर की भक्ति का साबुन लगाना पड़ता है। यदि हम प्रातःकाल और सायकाल ईश्वर भक्ति का साबुन नहीं लगायेंगे, तो हमारी आत्मा पर अज्ञान और पाप का इतना मैल जम जायेगा कि फिर उसका पवित्र और शुद्ध करना दुर्लभ हो जायेगा। हमारी आत्मा दुर्बल और मलिन होती चली जायेगी। जिसका परिणाम दुःख और क्लेश के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। नियमानुसार और विधि-पूर्वक ईश्वर भक्ति निष्फल नहीं जाती। ईश्वर भक्ति इस भाव से करनी चाहिए कि जिस भाव से एक पतिव्रता स्त्री रण में गए हुए अपने पति का हर समय ध्यान रखती है, या जिस प्रकार बाज़ीगर ऊपर रस्से पर चलते हुए अपने बोझ का पूरा ध्यान रखता है। अशुद्ध मन से हम न चाहे जितनी देर ईश्वर भक्ति करते रहें किन्तु उसका कोई लाभ नहीं। गवैये और भाट के समान ईश्वर के नाम की रट लगाने से जीवन सफल नहीं होता। केवल आँख मींच कर बैठ जाने या माला आदि फेरने से ईश्वर भक्ति का बहुत ही कम सम्बन्ध है। ईश्वर भक्ति से पहले ईश्वर के साथ मन को एकाग्र करके सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है। केवल ऐसा करने से ही जीवन उच्च बनता है और परमात्मा के साक्षात्कार दर्शन होते हैं।

जिन आत्माओं को यह अनुभव होजाता है कि मेरा सम्बन्ध परमात्मा से है। मुझे परमानन्द केवल परमेश्वर से सम्बन्ध करने से ही मिल सकता है। तब वे आत्मायें व्याकुल और बेचैन होजाती हैं। जैसे नदी नाले पहाड़ों और घाटियों को चीरते फाड़ते और मैदानों तथा भयानक जंगलों को पार करते

हुए अपने प्रिय समुद्र से गले मिलकर और सन्तुष्ट होकर उसी में लीन होकर एक रंग रूप होजाते हैं, इसी प्रकार पवित्र आत्मायें समस्त प्रकार की रूकावटों को हटाकर और समस्त प्रकार के कष्ट सहन करते हुए अपने प्रिय परमेश्वर को प्राप्त कर ही लेती हैं। परमेश्वर के प्राप्त होजाने पर मेरे और तेरे का पर्दा हट जाता है और फिर चारों ओर पारब्रह्म परमेश्वर का ही प्रकाश नजर आने लगता है।

ईश्वर-भक्ति दुर्बल व मलिन आत्माओं के वश की बात नहीं—वास्तव में प्रकृति की लपेट में आई हुई दुर्बल और मलिन आत्माओं के लिए ईश्वर भक्ति जंजाल और समय का नष्ट करना है। उनके लिए ईश्वर भक्ति एक कठिन और विकट मंजिल है। जो आत्मायें काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया, आलस्य तथा खाओ, पीओ और आनन्द करो के चक्कर में फंसी हुई होती हैं, उन्हें ईश्वर भक्ति से किसी प्रकार का कोई लगाव नहीं होता। ऐसी आत्मायें तो ईश्वर और उसके भक्तों की हँसी उड़ाया करती हैं। उनका काम तो केवल अच्छे खाने, बढ़िया पहनने ओढ़ने और मनोरंजन मनाने के अतिरिक्त परलोक की किसी बात से कोई प्रयोजन नहीं होता। उन्हें पता ही नहीं होता कि ईश्वर का स्वरूप क्या है, उसकी भक्ति क्यों और कैसे की जाती है, और ईश्वर भक्ति के लाभ क्या हैं? ऐसी दुर्बल आत्मायें ईश्वर भक्ति कर ही नहीं सकतीं और न ही ईश्वर भक्ति के कंकरीले, पथरीले और विकट मार्ग पर चल सकती हैं।

ईश्वर ने मनुष्य को अपनी भक्ति कराने के लिये मजबूर नहीं किया—सीमेटिक (Semitic) लोग (यहूदी, ईसाई और मुसलमान) तो ये ही कहते हैं कि ईश्वर ने मनुष्य को अपनी

पूजा कराने के लिए उत्पन्न किया है, पर वैदिक धर्म का ऐसा सिद्धांत नहीं है। परमात्मा ने किसी को भी अपनी पूजा, भक्ति और प्रशंसा कराने के लिए मजबूर नहीं किया है। मनुष्य ईश्वर भक्ति करे या न करे वह सर्वथा स्वतन्त्र है। यदि कोई ईश्वर भक्ति और ईश्वर प्रशंसा खूब बढ़ा चढ़ाकर करता है, तो इससे वह प्रसन्न नहीं होता। यदि कोई उसके नाम से घृणा करता है तो भी उससे वह अप्रसन्न नहीं होता। परमात्मा तो सदा एक रस रहता है। परमात्मा स्वय महान है। उसके लिए चापलूसी, प्रशंसा और भक्ति आदि करने या न करने से प्रसन्न या अप्रसन्न होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। ईश्वर भक्ति तो हम ईश्वर के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करके अपने कल्याण के लिए करते हैं। उस सर्व शक्तिमान का पल्ला पकड़ कर हम स्वयं दुखों से छूटकर सुखों की प्राप्ति के लिए करते हैं।



द्वितीय खण्ड

प्रश्न–जिस वैदिक धर्म अर्थात हिन्दु धर्म की प्रशंसा करते आप नहीं थकते, हमें तो उसमें रूढ़िवाद के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं पड़ता। इस धर्म से बहुत अच्छे तो अन्य धर्म, मजहब और मत-मतान्तर ही हैं। हिन्दु धर्म तो एक खिचड़ी और गपड़ चौथ धर्म है। इसकी कोई एक न धार्मिक पुस्तक है और न कोई एक ईश्वर। इसका आपस में भी तो कोई संगठन नहीं है। इसकी पूजा का कोइ एक साधन नहीं है। कोई पीपल को, कोई तुलसा को, कोई आंवले आदि वृक्षों को पूज कर मुक्ति चाहता है, तो कोई सांपों को दूध पिला पिलाकर उनकी पूजा उपासना कर रहा है। कोई भिन्न २ प्रकार की मूर्तियों के समक्ष हाथ बांधकर गिड़गिड़ा रहा है। कोई मनुष्य शरीर पर हाथी की सूंड लगे गनेश का पूजन कर रहा है, कोई लम्बी पूंछ वाले हनुमान की उछल २ कर बल प्राप्त करने की इच्छा कर रहा है। कोई माता, शीतला, डंकिनी और संखनी आदि की खुशामद कर करके मना रहा है। कोई भांति २ के देवी-देवताओं की मूर्तियों पर फूल, पत्ती, नारियल और मिष्टान आदि चढ़ाकर सुखों की प्राप्ति के लिए आंसू बहा रहा है। कोई काली, महा काली, भैरों और अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियों के आगे पशुओं का बध कर करके उन्हें प्रसन्न करके अमर होजाने की मांग कर रहा है। कोई किसी पीर, फकीर, गुरू और सिद्ध आदि को ईश्वर समान जानकर उसकी सेवा और पूजा करके मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा कर रहा है। कोई जादू, मन्त्र, तन्त्र, मूठ, करामात और चमत्कार इत्यादि द्वारा मनोकामनाओं की सिद्धि के चक्कर में पड़ा हुआ है। कोई गंगा, यमुना और त्रिवेणी

आदि नदी नालों और तालाबों को मुक्तिदाता समझ कर ग़ोते लगा रहा है। कहां तक कहा जाये हिन्दु धर्म के मनगढ़न्त तेतीस करोड़ देवी-देवता हैं। उन सबके नाम और काम का भी आज तक किसी को कोई पता नहीं चल सका, किन्तु हिन्दु हैं कि आँख मींचकर उन सबका भांति भांति के अनुचित ढंगों से पूजन कर रहा है। देखा आपने ! हिन्दु धर्म का तो वास्तविक रूप यह है ?

उत्तर—यह तो हमने माना कि आज हिन्दु धर्म की ऐसी ही बिगड़ी दशा है। किन्तु यह हिन्दु धर्म वह वास्तविक वैदिक धर्म या हिन्दु धर्म नहीं है, जो सृष्टि की आदि से लेकर महाभारत के युद्ध तक बराबर चलता रहा था। हम उसी हिन्दु सनातन धर्म के गीत गा रहे हैं और उसी पर गौरव कर रहे हैं। वैदिक धर्म के सत् शास्त्रों और बचे कुचे इतिहास को ध्यान पूर्वक अध्ययन करने से हमारी प्रशंसा करने की सिद्धि और पुष्टि होती है।

हिन्दु धर्म में मूर्ति पूजा अवतारवाद और गुरूड़मवाद की विचार धारा और कुछ कुप्रथायें समय समय पर सम्मिलित होती चली गई थीं, इसी कारण आपको आज यह धर्म खिचड़ी प्रतीत होरहा है। ये सब कुप्रथायें और वेद विरूद्ध सिद्धांत कुछ लोगों ने अज्ञानता के कारण और कुछ स्वार्थी लोगों ने अन्य मत-मतान्तरों की कुप्रथाओं की देखा देखी हिन्दु-धर्म मे सम्मिलित करके हिन्दु धर्म को खिचड़ी बना दिया था।

वैदिक धर्म अर्थात् हिन्दु धर्म की धार्मिक पुस्तक वेद है। उसमें केवल एक ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना की साफ शब्दों में हिदायत है। वेद आज्ञानुसार पूजा का एक साधन है। वेद में संगठन के लिए पूर्ण रूप से बल दिया गया है। कहां तक कहा जाए वेद में लोक और परलोक की उन समस्त बातों पर

प्रकाश मौजूद है कि जिन बातों का अपने कल्याण के लिए मनुष्य को जानना आवश्यक है।

प्रश्न—क्या बतायें, हमें तो ईसाई और इस्लाम मत हिन्दू धर्म से बहुत सी बातों में अच्छे प्रतीत होरहे हैं। उन मतों में हिन्दु धर्म जैसी कुप्रथायें और मूर्ति पूजा आदि नाम को भी दिखाई नहीं पड़तीं। ये दोनों मत तो केवल एक ईश्वर की स्तुति, उपासना और प्रार्थना का आदेश देते हैं।

उत्तर—ऐसा प्रतीत होता है कि आपने इन मतों की भीतरी दशा को जानने का कभी कोई प्रयत्न नहीं किया। इन मतों में भी भांति भांति की पूजायें और कुप्रथायें प्रचलित हैं। हिन्दु धर्म में कुछ कुप्रथायें इन मतो की भी देखा देखी सम्मिलित हुई हैं। नमूने के रूप में कुछ कुप्रथायें और पूजायें आपको सुना रहा हूँ। आप सच्चे हृदय से बतलाइये कि उन मतों में ये सब बातें हैं या नहीं ?

ईसाई मत में यह कहा जाता है कि ज्ञान प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं वरन् श्रद्धा और विश्वास ही पर्याप्त है। ईसाई लोग अन्ध-विश्वास में फंसे हुए हैं। उनके पादरियों का बोलबाला है और उनके शब्द अटल समझे जाते हैं। कैथोलिक (Catholic) गिरजा में जाकर देखिए। हजरत ईसा, उनकी माता मरियम, सेन्ट पॉल, सेन्ट पीटर और सेन्ट जैरूम आदि महानुभावों की मूर्तियों की पूजा बड़ी श्रद्धा और प्रेम से होती है और उनसे दुःख और क्लेश दूर करके स्वर्ग (जन्नत) की मांग की जाती है। उन महापुरुषों में भांति भांति के चमत्कार दिखाने पर विश्वास चला आरहा है। हः ईसा को ईश्वर का इकलौता बेटा और मुक्तिदाता माना जाता है। पादरियों के प्रमाण-पत्र देने पर पाप कर्मों के क्षमा होजाने पर विश्वास किया जाता है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी पूजायें और कुप्रथायें प्रचलित हैं।

इस्लाम में भी एक नहीं सैंकड़ों प्रकार की पूजायें और उपासनायें प्रचलित हैं। देखिए! सरहिन्दी, शाह वलीउल्लाह, शेख़ अब्दुल क़ादिर जिलानी, ख्वाजा मौयूदीन चिश्ती, ह० खलील बग़दादी, ह० साबरी, ह० अहमद बरेलवी, सय्यद सालार, ख्वाजा अजमेरी, इमाम गज्ज़ाली, शाहमिना आदि हजारों छोटे बड़े और अज्ञात पीरों, फकीरों और औलयाओं की क़ब्रों पर बड़ी श्रद्धा के साथ सिर झुकाकर और माथे रगड़कर फल फूल, मिष्टान, वस्त्र, मुर्गा, मुर्गी और बकरा बकरी आदि पशुओं को चढ़ाकर मनो-कामनाओं की पूर्ति के लिए मांग की जाती है। वृहस्पतिवार का दिन उन पीरों, फकीरों आदि का पवित्र और विशेष दिन माना जाता है। उस दिन उनकी कब्रों पर रोशनी की जाती है और नाच रंग आदि किया जाता है। उन पीरों फकीरों की कब्रों पर वार्षिक उत्सव भी बड़ी धूमधाम और श्रद्धा पूर्वक मनाये जाते हैं। उनकी कब्रों को स्नान कराया जाता है और स्नान के पानी को पवित्र समझकर माथे और आँखों पर लगाया जाता है। इसके अतिरिक्त ताबूत सकीना परस्ती (पूजा) ग़ौस परस्ती, भूत और चुड़ैल परस्ती, जिन परस्ती, रसूल परस्ती, मक़बरे रसूल परस्ती, क़दमे रसूल परस्ती, बाले रसूल परस्ती, कदमे इब्राहीम परस्ती, करबला और खाके नजफ परस्ती, काबा परस्ती, मदीना परस्ती, संगे अस्वद परस्ती, अली परस्ती, जामे काबा परस्ती इत्यादि परस्तियां प्रचलित हैं।

अमीर हमज़ा की शबरात, इमाम हसन और हुसैन का मोहर्रम, शाह अब्दुलहक का तोशा और हलवा, हजरत बीबी की सैनक, ह० अली का मीठे चावलों का कुण्डा, बूअली कलन्दर का मालिदा, इमाम हुसैन का हलीम और शर्बत, बाबा फ़रीद की खिचड़ी, सैयद सुलतान का मोठा रोट और रेवड़ियां, ख्वाजा मौमूदीन की चावलों की देग। कहां तक कहा जाए इसी प्रकार की

और भी बहुत सी पूजायें और कुप्रथायें प्रचलित हैं। काग़ज़ के ताज़िये बनाकर गली-कूंचों और बाजारों से निकालकर उन पर मिठाई फल-फूल आदि चढ़ाना। मनोकामना की पूर्ति की प्रार्थना करना, सिर झुकाना, उनके नीचे से बच्चों को आयु बढ़ाने की नियत से निकालना। तावीज़ गण्डा और धागा आदि बनवा कर स्त्री, पुरुषों और बच्चों के गले या हाथों में दुःख दर्द दूर होजाने की श्रद्धा से बांधना। रसूलों, नबीओं, पैग़म्बरों, पीरों, फकीरों और औलयाओं में भांति २ के करामात और चमत्कार जानकर उन पर विश्वास करना।

प्रश्न—अब हमने सभी धर्मों-मज़हबों और मत-मतान्तरों की भीतरी दशा का अनुभव कर लिया। इन सब में अज्ञानता और लालच के कारण भांति २ की पूजायें और कुप्रथायें प्रचलित हैं। इनमें आपसी इतने अधिक सिद्धांतिक मतभेद हैं कि जिन्हें देखकर एक दार्शनिक, वैज्ञानिक और गम्भीर विचारक के हृदय में इन सबसे घृणा उत्पन्न होजाती है। कोई यह भी तो निर्णय नहीं कर सकता कि इनमें से किसको अच्छा और किसको बुरा कहा जाये। किसको माना जाये और किसको न माना जाये। आप स्वयं ही बताइये ?

उत्तर—यह बात नहीं है जो आप समझे। दर्शन, विज्ञान और अनुभव के आधार पर जब आप इन सभी धर्मों और मज़हबों तथा मत-मतान्तरों के सिद्धांतों को कसौटी पर बार-बार रगड़कर जांच पड़ताल करेंगे तो आपको स्वयं पता चल जाएगा कि इनमें से कौनसा धर्म या मज़हब कसौटी पर पूरा उतर कर मान्य होजाता है और कौनसा खोटा सिद्ध होकर अमान्य रह जाता है। इस प्रकार जो धर्म या मज़हब पूरा उतर

जाए उसको मानकर उसके अनुसार अपना जीवन सफल बनाइये। साथ ही यह भी निश्चय कर लीजिए कि बिना धर्म, सदाचार का कोई आधार नहीं है। (Morility without Dharama has no legs to stand upon.)

सदाचार क्या है ? यह भी आप साथ ही समझ लीजिए—मानसिक (Mental) और चरित्र की पवित्रता सदाचार कहलाता है। जिन कामों से दूसरों को सुख और शांति मिले वह सदाचार है। केवल अपना सुख और शांति ही सुख और शांति नहीं है। दूसरों के भी सुख और शांति का ध्यान रखना सदाचार है। वास्तविक सदाचारी जीवन धर्म के पालन करने से ही आया करता है। धर्म के पालन बिना सदाचारी जीवन बन ही नहीं सकता। धर्म और मजहब में मेल नहीं है बरन् विरोध है। धर्म का अर्थ मजहब कदापि नहीं है।

प्रश्न—धर्म और मजहब में क्या अन्तर है ?

उत्तर—निष्काम कर्म से कर्तव्य पालन करना धर्म कहलाता है, दूसरे शब्दों में धर्म का नाम ही सदाचार है समस्त वस्तुओं तथा जीवन के स्वाभाविक गुणों और नियमों का नाम भी धर्म है। जिन कामों से प्राणीमात्र का हित हो वह धर्म है। धम और अन्ध विश्वास मे बैर है। ये दोनों एक साथ ऐसे नहीं रह सकते, जैसे प्रकाश और अन्धकार एक साथ नहीं रह सकते। समस्त प्राणियों के विधान (Law of nature) का नाम धर्म है धर्म की नींव दर्शन, विज्ञान और अनुभव पर होती है।

मजहब या मत-मतान्तर का प्रथम सिद्धांत किसी सिद्धांत विशेष में विश्वास रखना होता है। मजहब की नींव अधिकतर

ज्ञान, विज्ञान और अनुभव पर निर्भर नहीं होती वरन् अन्ध-विश्वास और पक्षपात पर होती है। मजहब या मत-मतान्तर में विचारों की स्वतन्त्रता नहीं होती। मजहब और मत-मतान्तर विचारों की स्वतन्त्रता छीनता है। कोई मजहब या मत-मतान्तर, दर्शन और विज्ञान से अपने सिद्धान्त टकरा कर परखने की इजाजत नहीं देता। किन्तु धर्म में यह बात नहीं होता। धर्म विचारों की पूर्ण स्वतन्त्रता देता है और बलपूर्वक कहता है कि उसके प्रत्येक सिद्धांत को दर्शन विज्ञान और अनुभव के आधार पर टकरा २ कर खूब परख लिया जाए और इस प्रकार जो सिद्धांत सीधा सच्चा सिद्ध होजाए तथा उसकी पुष्टि अपना विवेक स्वयं करदे। बस उसी को धर्म समझना चाहिए। शेष सब अमान्य जानकर छोड़ देना चाहिए।

प्रश्न——यह ज्ञान-विज्ञान और प्रकाश का युग है। इस युग में अब ईश्वर तथा धर्म कर्म की बातें चलनी कठिन हैं। प्रत्येक समझदार मनुष्य अब धर्म और मजहब के चक्कर में पड़ कर अपना मस्तिष्क नष्ट करना नहीं चाहता। यह तो आपको भी मानना पड़ेगा कि ईश्वर के मानने से बिना कारण उस पर तकिया लगाकर उसके बन्धन में पड़ना पड़ता है। यह आपका ईश्वर ही तो है, जो धर्म या मजहब के नाम से एक लम्बे समय तक संसार में लड़ाई झगड़े, अत्याचार, रक्त-पात और लूट-खसोट आदि कराकर शांति-भंग कराता रहा है। आपके ईश्वर के ऐसे काले कारनामों से इतिहास भरा पड़ा है। बड़ी मुश्किल से तो उससे छुटकारा मिल रहा है। आप फिर उसी ईश्वर को लाकर वही भयानक दशा उत्पन्न करने की शिक्षा दे रहे हैं। भाई साहब ! मनुष्य दुनिया में खाने पीने और आनन्द भोगने के लिए जन्म लेता है। इस आत्मा, परमात्मा, धर्म, कर्म आदि

के चक्कर में पड़कर जंजाल मोल लेने के लिए नहीं। हम तो ये ही समझते हैं कि इन सब धार्मिक और मजहबी बातों से दूर रहने में ही सच्चा जीवन है ?

उत्तर—आप इसको प्रकाश का युग पुकार रहे हैं। यह प्रकाश का युग नहीं, भौतिकवाद का युग है। यह अत्याचार, रक्तपात, लड़ाई झगड़े, मक्कारी चालाकी, धोखेबाजी, छल फरेब और कपट आदि बातों का युग है। रहा ईश्वर मानने का प्रश्न। ईश्वर तो स्वयं सर्व व्यापक अन्तर्यामी और सर्व शक्तिमान आदि गुणों वाला है। आप उसको मानें या न मानें। ईश्वर पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि वह एक रस है। हां ! यह तो हम जानते हैं कि ईश्वर को मानने से मनुष्य ईश्वर के बन्धन में नहीं पड़ता, किन्तु उसके पाप-कर्मों के बन्धन कट जाते हैं और वह आनन्द प्राप्ति का भागी बन जाता है।

याद रहे ! सच्चा धर्म कभी और किसी दशा में भी लड़ाई झगड़े, अत्याचार और रक्तपात आदि का पाठ नहीं पढ़ाता। इसका एकमात्र कारण यह है कि सच्चा धार्मिक मनुष्य यह भली भांति जानता है कि धर्म का विषय प्रत्येक मनुष्य का अपना विशेष व्यक्तिगत विषय है। धर्म के सिद्धांतों में शंका और सन्देह को बलात्कार और अत्याचार से दबाना अधर्म है। यह तो हम मानते हैं कि मजहब के नाम पर अत्याचार और रक्तपात आदि हुए हैं, किन्तु धर्म के नाम पर नहीं। जो भी लड़ाई-झगड़े, रक्तपात और अत्याचार आदि हुए हैं या होते हैं। वे सब अज्ञान तथा अधर्म के कारण होते हैं। मजहबी लोगों के सामने केवल अपने मजहबी सिद्धांत मनवाने का ही प्रश्न नहीं होता वरन् अपने रसूल, पैग़म्बर, नबी या ईश्वर के बेटे ह० ईसा की प्रभुता मनवाने का प्रथम प्रश्न छिपा रहता है। मजहबी

लोग अपने रसूल या पैग़म्बर या नबी या मसीह या गुरू आदि से किसी अन्य मज़हब के पैग़म्बर आदि को आगे बढ़ते हुए सहन नहीं कर सकते। बस यही कारण लड़ाई झगड़ों और रक्तपात आदि के हैं।

जो लोग आत्मा परमात्मा और धर्म-कर्म आदि से छुटकारा पाकर भौतिकवाद की लपेट में आजाते हैं और अपना सिद्धांत 'खाओ, पीओ और आनन्द करो' अपना लेते हैं। वास्तव में वे लोग इस जीवन को ही सब कुछ समझ लेते हैं। उन्हें परलोक का कोई ध्यान नहीं होता। ऐसे लोग ही धर्म से घृणा करने लगते हैं।

अब तनिक इस पर विचार कीजिए! क्या ये भौतिकवादी संसार में सुख और शांति उत्पन्न करने में सफल होरहे हैं? हम तो देख रहे हैं कि रोटी, कपड़े और मकान के नाम पर कितने भयानक अत्याचार और रक्तपात हुए और होरहे हैं। राजा, पून्जीपति और ईश्वर के प्रभाव को मिटाने के लिए कम्युनिष्टों ने कितने अत्याचार किये? इसके अतिरिक्त रूस और अमेरिका में जान जान की बाजी लगी हुई है और एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर सर्वनाश करने की भयंकर योजनायें बनाते हुए भयंकर अस्त्र-शस्त्र तैयार करने में लगे हुए हैं। बताइये तो सही, ये सब कुछ क्यों होरहा है? भयंकर युद्ध का काला नाग अपना फना फैलाए डसने के लिए सिर पर तैयार खड़ा है। न जाने कब और कैसे यह अपना वार करदे। कम्युनिष्ट रूस ने रूस और आस्ट्रिया आदि योरोपियन देशों की जनता का आपके सामने ही किस कठोर हृदय से रक्तपात किया। अब हाल में ही कम्युनिष्ट चीन ने तिब्बत की जनता पर जो अत्याचार किए उन्हें सुनकर ही शरीर के रोंगटे खड़े होजाते हैं। कम्युनिष्ट देशों के समक्ष

आत्मा, परमात्मा, धर्म और कर्म अर्थात् धार्मिक सिद्धांत मनवाने का तो कोई प्रश्न होता ही नहीं तो फिर बतलाइए तो सही ये भौतिकवादी कम्युनिष्ट संसार का क्यों सर्वनाश करने पर तुले हुए हैं ? आपने कभी इस पर भी तो विचार किया होता।

प्रश्न--हम तो बार २ गहरा विचार कर करके अन्त में इसी परिणाम पर पहुँचे हैं, कि ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है। हमें तो ऐसा ज्ञात होता है कि पिछले अन्धकार और अज्ञान के युग में कुछ स्वार्थी, लालची और चालाक लोगों ने एक कल्पित और मनगढ़न्त व्यक्ति की सत्ता बनाकर उसके ओम्, ईश्वर, परमेश्वर, परमात्मा, ब्रह्म, अल्ला और (खुदा) आदि न जाने और क्या २ सैंकड़ों नाम रखकर जाहिल और गंवार लोगों के हृदयों में एक हव्वा बिठा दिया था। अब वह आडम्बर और अज्ञानता की बातें अधिक समय तक नहीं चल सकतीं। जो मनुष्य इस प्रकार उस पुरानी और बोदी रस्सी के सहारे पार होना चाहता है वास्तव में वह अपने जीवन को नष्ट करना चाहता है। उसे मनुष्य जीवन का आनन्द उठाने का कुछ पता नहीं। अब ईश्वर नाम के मृतक शरीर के साथ चिपटे रहने से किसी प्रकार का कोई लाभ नहीं हो सकता।

उत्तर--ज्ञात होता है आपने ईश्वर के अस्तित्व के विषय में कुछ भी विचार नहीं किया। यदि आप ईश्वर के विषय में सच्चे हृदय से एक बार भी विचार कर लेते तो आप यदि ईश्वर की सत्ता से इन्कार भी करना चाहते तो न कर सकते।

याद रहे जब तक मन, चित्त लगाकर मजबूती के साथ ईश्वर का पल्ला नहीं पकड़ा जायेगा और ईश्वरीय ज्ञान को

शिक्षा प्रणाली में उचित स्थान नहीं दिया जायेगा, तब तक सुख, सन्तोष और शांति की प्राप्ति तथा मन की व्याकुलता दूर नहीं हो सकती। चित्त की स्थिरता, मन के विषयों से उदासीनता आत्मा की उन्नति, मिथ्या अहकार और अभिमान के नाश के लिए तथा बुद्धि की तीव्रता के हेतु हमें ब्रह्म ज्ञान की गंगा में गोता लगाना ही पड़ेगा। हमें ब्रह्म ज्ञान रूपी दीपक में भक्ति का तेल डालकर उस दीपक को प्रकाशित रखना ही होगा। भौतिक-वाद के बुरे परिणामों से बचने के लिए हमें ईश्वर का पल्ला पकड़ना ही पड़ेगा। ऐसा करने से ही हमारे दिव्य गुणों का प्रभाव हमारी आत्मा पर पड़ेगा और हमारे गुणों में वृद्धि होगी। परम पिता परमेश्वर और उसके गुण, कर्म, स्वभाव का मनन करके अटल विश्वास और श्रद्धा के साथ सच्चा स्नेह करने से ही हमें लोक और परलोक में सुख और शांति प्राप्त हो सकती है अन्यथा नहीं।

ईश्वर की सत्ता और उसके नाम मनगढ़न्त और कल्पित नहीं हैं। उसकी सत्ता स्वार्थी और लालची लोगों ने बनाकर खड़ी नहीं की। ईश्वर है और अवश्य है। भौतिकवादी जो माया जाल में फंसा हुआ है, उसके लिए ईश्वर विषय जटिल है। रहा ईश्वर की मृत्यु कर देने का प्रश्न यह भौतिकवादियों की कल्पना है। संसार में कितने ही शक्तिशाली, महाबली. राजे-महाराजे और विद्वान् आदि उत्पन्न हुए और कितने ही ऐसे भी उत्पन्न हुए जिन्होंने अपने आपको ईश्वर मनवाया। किन्तु वे सब आन की आन में नष्ट कर दिए गए। ईश्वर तो अनन्त, अनादि, अजर और अमर है। अल्पज्ञ, मनुष्य भला उसकी मृत्यु क्या कर सकता है ?

सृष्टि की आदि से आज तक बहुत से ऋषि, महर्षि,

महात्मा, ज्ञानी और आचार्य, इस विशाल सृष्टि, सूर्य, चन्द्रमा, और नक्षत्र आदि की बनावट और उनके निश्चित् कार्य, जीवधारियों के रंग रूप और गुण कर्म स्वभाव, भांति २ के फल-फूल, रंग बिरंगी फुलवाड़ी, पत्ती, जड़ी-बूटी आदि पर गहरी दृष्टि डाल २ कर निरीक्षण करते चले आये हैं। उन्हें अपने निरीक्षण के आधार पर बरबस होकर कहना पड़ा कि इस कार्य रूप ब्रह्मांड, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र और लोक-लोकान्तर आदि को धारण करके अपनी सामर्थ्य से स्थिर रखने और निश्चित समय पर नाश करने वाली कोई चेतन, सर्व शक्तिमान, सर्व व्यापक, सर्व अन्तर्यामी और सुध बुध शक्ति अवश्य है। बस वह जो शक्ति है, उसी के सैंकड़ों नहीं अनगिनत नाम उसके गुण, कर्म, स्वभाव और शक्तियों के आधार पर ये ब्रह्म ईश्वर, परमात्मा आदि हैं।

ईश्वर नाम की शक्ति का कोई नाम भी अनर्थक नहीं है। कहीं वह नाम गौणिक, कहीं धार्मिक और कहीं स्वाभाविक अर्थों के वाचक हैं। जहां वह कुछ नाम सांसारिक पदार्थों के लिए आते हैं, वहां वही नाम प्रसंग आदि प्रकरण से ईश्वर के लिए भी प्रयोग होते हैं। किन्तु जहां २ वे नाम सर्वज्ञ आदि विशेषण हों वहां २ उन नामों से परमेश्वर की शक्ति का ही बोध होता है। ईश्वर नाम की शक्ति के कुछ नामों को उदाहरण के रूप में संक्षिप्त अर्थों के साथ प्रस्तुत कर रहा हूं—

(१) ओ३म्—परमेश्वर का श्रेष्ठ और निज नाम 'ओ३म्' है। यह शब्द अ उ और म् इन तीन अक्षरों से मिलकर बनता है। इन तीनों अक्षरों में ईश्वर के लगभग सम्पूर्ण स्वरूप का वर्णन है। इस एक नाम में ही उसके बहुत से नाम आजाते हैं।

ओ३म् शब्द का प्रत्येक अक्षर उसके भिन्न २ नामों का वाचक और ग्राहक है। अन्य सब नाम गौणिक हैं। ओ३म् शब्द अथाह समुद्र है, इसलिए उसके अर्थ की पूरी व्याख्या करना आसान नहीं है। संक्षिप्त रूप से ये अर्थ कर सकते हैं कि जो समस्त ब्रह्मांड, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र और लोक-लोकान्तर आदि का उत्पत्ति, पालन और नाश कर्ता तथा अध्यक्ष है और जो अविद्या, राग, द्वेष तथा धर्म अधर्म रूपी कर्म और कर्मों के फल भोगने से जो वासनायें उत्पन्न होती हैं उन सबसे जो तीन काल में रहित है वह ओ३म् है। या यूं समझिए, कि जो सर्वश्रेष्ठ, समस्त सुखों का दाता, पापनाशक, सुध बुध और समस्त शक्तियों का केन्द्र है उसी का नाम ओ३म है। ओ३म् के सरल अर्थ 'रक्षा करने वाला' किये जाते हैं।

(२) 'ब्रह्म' सबसे बड़ा अनन्त बलयुक्त और सबका स्वामी।

(३) 'ईश्वर' सब प्रकार की सामर्थ्य वाला।

(४) 'परमात्मा' अति सूक्ष्म और अन्तर्यामी।

(५) 'परमेश्वर' जिसके तुल्य कोई न हो।

(६) 'भगवान्' महान् और अखिल ऐश्वरीय युक्त और भजन के योग्य।

(७) 'नारायण' सब जीवों में व्यापक।

(८) 'ब्रह्मा' जगत का रचयिता और पालन कर्ता।

(९) 'विष्णु' चर और अचर में व्यापक।

(१०) 'शिव' कल्याण और उद्धार कर्ता।

(११) 'स्वयंभू' उत्पन्न न होने वाला।

(१२) 'महादेव' देवों का देव, विद्वानों से विद्वान्, सूर्य आदि नक्षत्रों का रचयिता और प्रकाशक।

(१३) 'देव' सब चेष्टाओं का साधन और उप साधन, आनन्द दाता, प्रशंसा के योग्य, सबका प्रकाशक और ज्ञान स्वरूप।

(१४) 'गणेश या गणपति' प्रकृति आदि जड़ पदार्थों और जीवों आदि का रचयिता और पालन कर्ता।

(१५) 'शंकर' कल्याण कर्ता तथा आनन्द का दाता।

(१६) 'धर्मराज' धर्म प्रकाशक और अधर्म रहित।

(१७) 'यम' सब प्राणियों को यथा योग्य फल देने वाला और अन्याय रहित।

(१८) 'इन्द्र' समस्त ऐश्वरीय युक्त।

(१९) 'रुद्र' दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने वाला।

(२०) 'पुरुष' पूर्ण रूप।

(२१) 'लक्ष्मी' चराचर जगत् को रचकर अपने नियम में स्थिर रखने वाला, सब शोभाओं की शोभा, समस्त विद्वानों, योगियों और धार्मिक लोगों का लक्ष्य।

(२२) 'सरस्वती' शब्द, अर्थ, सम्बन्ध और प्रयोग का पूर्ण ज्ञानी।

(२३) 'श्री' विद्वानों, योगियों और धार्मिक लोगों के सेवन करने योग्य।

(२४) 'अनन्त' जिसकी अवधि न हो।

(२५) 'अनादि' जिसका आदि कारण न हो।

(२६) 'निराकार' जिसका आकार न हो और जो शरीर धारण न करे।

(२७) 'सच्चिदानन्द' इसमें तीन पद हैं सत्, चित्त और आनन्द, 'सत्' तीनों कालों में वर्तमान और एक रस रहने वाला, 'चित्त' चेतन और ज्ञान स्वरूप 'आनन्द' तीनों कालों में दुःख और क्लेश से रहित अर्थात् मुक्त जीवों का आनन्द दाता।

(२८) 'सर्व शक्तिमान्' अपनी सामर्थ्य से बिना किसी अन्य की सहायता से अपने समस्त कार्य करने वाला।

(२९) 'दयालु' अभय का दाता, सत्य और असत्य का जानने वाला तथा रक्षक।

(३०) 'न्यायकारी' सब जीवों को उनके कर्मानुसार अपने अटल नियम से न्याय पूर्वक यथा योग्य सुख दुख देने वाला।

(३१) 'अन्तर्यामी' सब प्राणी, अप्राणी रूप जगत् के अन्दर विराजमान होने से सबको अपने नियम में रखने वाला।

(३२) 'निर्गुण' सत, रज और तम रूप, रस, स्पर्श, गन्ध आदि प्रकृति के गुण, अविद्या, अल्पज्ञ, राग, द्वेष और क्लेश आदि जितने जीवों के गुण हैं उन सब गुणों से पृथक रहने वाला।

(३३) 'सगुण' पूर्ण ज्ञानी, सर्व सुखी, परम पवित्र, आनन्द और महान बल आदि गुणों से युक्त।

(३४) 'हिरण्यगर्भ' समस्त ब्रह्माण्ड और सूर्य आदि लोक लोकान्तरों को धारण करके अपने आधार पर स्थिर रखने वाला।

(३५) 'विराट' भिन्न २ प्रकार से जगत् को प्रकाशित करने वाला।

(३६) 'वसु' जिसमें सब आकाश आदि भूत निवास करते हैं और जो सब लोक-लोकान्तरों में निवास कर रहा।

(३७) 'पृथ्वी' समस्त विस्तृत जगत् का विस्तार करने वाला।

(३८) 'आकाश' समस्त जगत् में सब ओर से छाया हुआ और प्रकाशक।

(३९) 'अग्नि' ज्ञान स्वरूप और प्रकाशक, प्राप्त होने और पूजा के योग।

(४०) 'वायु' महा बलवान, चराचर जगत् का धारण, स्थिर और प्रलय करने वाला।

(४१) 'जल' परमाणों को अनेक प्रकार से संयोग और वियोग तथा जीवों को धारण करने वाला।

(४२) 'राहू' जिसके स्वरूप में कोई पदार्थ सम्मिलित नहीं, दुष्टों को पकड़कर दण्ड देने और धार्मिक जीवों को उभारने वाला।

(४३) 'केतु' सब जगत का निवास स्थान, सब रोगों से रहित, मुक्ति काल में जीवों को आनन्द देने वाला।

(४४) 'सूर्य' समस्त जगत की आत्मा, स्वयं प्रकाश स्वरूप और सबको प्रकाशित करने वाला।

(४५) 'चन्द्रमा' स्वयं आनन्द स्वरूप और आनन्द देवे वाला।

प्रश्न--ब्रह्म का लक्षण क्या है, बिना लक्षण कोई वस्तु जानी नहीं जाती ?

उत्तर--ब्रह्म का लक्षण यह है कि जो इस जगत और लोक-लोकान्तरों को धारण करके स्थिर रखता है और फिर निश्चित् समय पर प्रलय करता है। या यों समझिये कि जो अविद्या, राग, द्वेष तथा धर्म-अधर्म रूपी कर्म और उन कर्मों के फल भोगने से जो वासनायें उत्पन्न होती हैं और उन सबसे जो तीन काल में रहित है वह ब्रह्म है।

प्रश्न--ब्रह्म की सत्ता किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं होती। इसलिए उसकी सत्ता पर विश्वास करना व्यर्थ है।

उत्तर—ब्रह्म की सत्ता एक प्रमाण से नहीं, किन्तु सभी प्रमाणों से सिद्ध होती है। प्रथम तो आप यह जानलें कि प्रमाण कितने प्रकार के होते हैं। प्रमाण आठ प्रकार के हैं:—

१—प्रत्यक्ष (हक़उल यक़ीन), २—अनुमान (क़यास), ३—उपमान (नज़ीर या मिसाल), ४—शब्द (मौतबर क़ौल), ५—इतिहास (तारीख़), ६—अर्थापत्ति (कहने वाले का मन्शा), ७—सम्भव (मुमकिन), ८—अभाव (नेस्ती)।

इन प्रमाणों में से यदि इतिहास प्रमाण को शब्द प्रमाण के अन्तर्गत, अर्थापत्ति सम्भव और अभाव प्रमाणों को अनुमान प्रमाण के अन्तर्गत समझलें तो शेष केवल चार प्रमाण रह जाते हैं।

१—(क) प्रत्यक्ष प्रमाण—आंख, कान, नाक, ज़बान और खाल (त्वचा) ज्ञान इन्द्रियें हैं। आंख से रूप का, नाक से गन्ध दुर्गन्ध का, कान से शब्द का, वाणी से रस का और खाल (त्वचा) से स्पर्श (Touch) गुणों के साथ सम्बन्ध होकर आत्मा युक्त मन से उन गुणों के आधार पर गुणियों का जो भ्रांति रहित आत्मिक ज्ञान होता है, उसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। जो ज्ञान इन्द्रियों द्वारा होता है, उसको इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। जो ज्ञान इन्द्रियों से ग्रहण नहीं हो सकता, किन्तु उसका ज्ञान आत्मा को मन के द्वारा होता है, उसको मानस प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। ईश्वर का साक्षात्कार न इन्द्रियाँ कर सकती हैं और न ही मन कर सकता है, वरन् शुद्ध और सूक्ष्म आत्मा ही शुद्ध और अति सूक्ष्म परमात्मा का अनुभव कर सकती है। इसलिए इसको आत्म प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।

(ख) इस प्रत्यक्ष सृष्टि की रचना आदि को देखकर ज्ञान आदि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमात्मा प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध होता है।

(ग) जब आत्मा और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता है, तो चोरी आदि बुरी बातों, परोपकार आदि शुभ बातों के करने का जिस क्षण में आरम्भ होता है उस समय जीवात्मा की इच्छा और ज्ञान आदि उसी इच्छित बात को करने के लिए झुक जाती है। ठीक उसी क्षण जीवात्मा के भीतर बुरे कर्म करने में भय, शंका और लज्जा उत्पन्न होती है, अच्छे और शुभ कार्य करने में आनन्द, उत्साह, निडरता और निशंकता का भाव उठ जाता है। ये दोनों प्रकार के भाव जीवात्मा की ओर से नहीं, किन्तु परमात्मा की ओर से होते हैं। ये ईश्वर की प्रेरणा अच्छे और बुरे सभी व्यक्तियों को होती है। दुष्ट व्यक्ति इस प्रेरणा की ओर ध्यान न देकर दुष्ट कर्म कर बैठता है, किन्तु बुद्धिमान मनुष्य उस प्रेरणा की ओर ध्यान देकर पाप कर्म करने से बच जाता है।

(घ) जब जीवात्मा शुद्ध तथा पवित्र होकर मन और चित्त को एकाग्र करके परमात्मा का चिन्तन करती है, तो उस समय परमात्मा प्रत्यक्ष अनुभव होजाता है।

(२) अनुमान प्रमाण—व्याप्ति ज्ञान अनुमान प्रमाण कहलाता है। जैसे बहुत दूरी पर धुआँ उठता दिखाई तो देवे, किन्तु आंखों से दिखाई न देवे तो यह अनुमान होजाता है कि वहां अग्नि अवश्य है। अन्धेरी रात में कोई बैटरी और नक़ब लगाने का औज़ार आदि लेकर किसी गली में घूम रहा हो तो यह अनुमान होजाता है, कि यह चोर अवश्य है। किसी बालक को देखकर यह अनुमान होजाता है कि इसका जन्म नर-नारी के संयोग से हुआ है। यद्यपि उस नर-नारी को संयोग करते हुए किसी ने नहीं देखा। किसी फर्नीचर, भवन, मशीन या अस्त्र-शस्त्र, एटम बम या मिज़ाइल्स (Missiles) आदि को देखकर यह अनुमान अवश्य होजाता है, कि इनके बनाने वाले कोई

चतुर और बुद्धिमान कारीगर या इन्जीनियर या वैज्ञानिक हैं। तो फिर बतलाइये तो सही इस विचित्र ब्रह्माण्ड, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, रंग-बिरंगी फुलवाड़ी, जड़ी-बूटी आदि की रचना और उन सबका अटल नियमों से बंधे हुए होने से यह अनुमान क्यों नहीं हो सकता, कि इनके रचने वाला भी कोई महान बुद्धिमान, कोई महान शक्तिमान् कोई महान कारीगर और कोई महान इन्जीनियर अवश्य है ? क्या कार्य को देखकर कारण का अनुभव नहीं होता ? अवश्य होता है।

(३) उपमान प्रमाण—एक जैसी आकृति वाले मनुष्य या वस्तु को उपमान प्रमाण कहते हैं। संसार की एक जैसी आकृति वाले पदार्थों की रचना को देखकर उपमान प्रमाण से परमात्मा सिद्ध होता है।

(४) शब्द प्रमाण—सतकारी, सत्यवादी और आप्त पुरुषों का वचन शब्द प्रमाण कहलाता है। जैसे शुद्ध ज्ञान पूर्वक कर्म करने से आनन्द और अशुद्ध ज्ञान पूर्वक कर्म करने से दुःख और क्लेश होता है।

(५) इतिहास प्रमाण—इतिहास में किसी घटना के होने से इतिहास प्रमाण कहलाता है।

(६) अर्थापत्ति प्रमाण—किसी एक बात के कहने से दूसरी बात स्वयं सिद्ध हो जाय, तो उसे अर्थापत्ति प्रमाण कहते हैं। जैसे—बादलों से वर्षा होती है। इस बात के कहने से यह स्वयं सिद्ध हो गया कि बिना बादलों के बारिश नहीं होती। राज मजदूरों के बनाने से मकान बनता है। यह कहने से भी स्वयं सिद्ध हो गया कि बिना राज-मजदूरों के बनाये मकान नहीं बनता।

(७) सम्भव प्रमाण—जो बात होनी सम्भव है वह सम्भव प्रमाण कहलाता है। जैसे—गेहूं बोने से गेहूं का उत्पन्न

होना सम्भव है। किसी और अन्न का उत्पन्न होना सम्भव नहीं है।

(८) अभाव प्रमाण—जो वस्तु कहीं न हो तो उस पदार्थ के न होने को अभाव प्रमाण कहते हैं। या यूं समझिये कि अभाव से भाव नहीं हो सकता।

इसी प्रसंग में सत्य-असत्य और सम्भव-असम्भव के निर्णय करने के नियमों पर भी ध्यान दीजिये—

(१) जो बात ईश्वर के गुण, कर्म स्वभाव और ईश्वरीय ज्ञान तथा नियमों के अनुकूल हो, वह सत्य और सम्भव है और जो इसके प्रतिकूल हो, वह असत्य और असम्भव है।

(२) जो बात सृष्टि नियम के अनुकूल हो वह सत्य और सम्भव है और जो बात सृष्टि नियम के विपरीत हो वह असत्य और असम्भव हैं, जैसे—आकाश के फूल।

(३) सत्यवादी, सत्यमानी, सत्यकारी, धार्मिक विद्वानों और आप्त पुरुषों के उपदेश के अनुकूल होने से सत्य और सम्भव है और विरुद्ध होने से असत्य और असम्भव है।

(४) अपनी आत्मा की पवित्रता और शुद्ध ज्ञान के अनुकूल होने से सत्य और सम्भव है। जैसे अपनी आत्मा को सुख-दुःख होता है ऐसे ही दूसरे जीवधारियों को दुःख सुख होता है।

(५) ऊपर लिखे आठों प्रमाणों में से जो बात किसी एक या अधिक प्रमाणों से सिद्ध हो वह सत्य और सम्भव है, जो बात किसी प्रमाण से भी सिद्ध न हो वह मिथ्या और असम्भव है।

प्रश्न--यदि किसी स्थान पर आपका ईश्वर मौजूद है, तो वह प्रकट होकर लोगों को क्यों अपने स्वरूप का निश्चय नहीं करा देता, ताकि यह प्रमाण आदि का झगड़ा ही समाप्त होजाये ?

उत्तर--आजकल देखने में यह आ रहा है, कि अधिकतर लोग माया वाद के चक्कर में पड़कर और सैकूलरइज्म (Secularism) के उलटे अर्थों की लपेट में आकर ईश्वर विषय पर गम्भीर विचार करने और उसके वास्तविक स्वरूप के जानने का प्रयत्न नहीं करते। कुछ मनचले नोजवान तो यह चाहते हैं, कि यदि ईश्वर नाम की कोई सत्ता कहीं पर उपस्थित है, तो वह भारतीय मेम के लिबास में कोई बढ़िया सी साड़ी पहन कर, योरुपियन नमूने के बाल बनाकर, मुँह पर पावडर जमा कर, होंठों और नाखूनों को सुर्खी से रचकर, ऊंची ऐड़ी का सेंडिल पहन कर, चश्मा चढ़ाकर और पर्स हाथ में लेकर लचक मचक के साथ हमें मिल जाय, तो हम उसे साथ लेकर किसी अच्छे होटल या रेस्टौरैन्ट में जाकर उसे कुछ खिलाते पिलाते रहें और उसके साथ कुछ उसके राजकाज की और कुछ मनोरंजन की बातें करते रहें। यदि यह सब कुछ होगया तो समझ लो कि ईश्वर का अस्तित्व है और यदि ऐसा नहीं हो सकता तो ईश्वर मन गढ़न्त और कल्पित है। यह धारणा अज्ञानियों और भौतिकवादियों की है।

श्रीमान् जी ! ईश्वर अति सूक्ष्म (Rarest-State) और अप्राकृतिक है। वह निराकर, निर्विकार, सर्वव्यापक और अन्तर्यामी है। उसको न तो ये आंखें देख सकती हैं, न ही हाथ टटोल सकते हैं। अप्राकृतिक ईश्वर का अनुभव केवल अप्राकृतिक जीवात्मा ही कर सकती है।

इसको तनिक स्पष्ट रूप से इस प्रकार समझने की चेष्टा कीजिये। यह तो आप भी मानते होंगे कि एक जीवित शरीर और मृतक शरीर में अन्तर है। जीवित शरीर में बहुत से कार्य स्वयं होते रहते हैं। जैसे कटे हुए बालों का फिर उग जाना, कटे हुए नाखूनों का फिर निकल आना और शरीर पर लगे घाव का फिर भर जाना आदि। इसके प्रतिकूल मृतक शरीर के कटे बाल और नाखून फिर नहीं उगते, लगा हुआ घाव फिर नहीं भरता। क्या आपने कभी यह जानने का कष्ट किया है कि ऐसा क्यों होता है? जीवित शरीर में एक सूक्ष्म चेतन सत्ता होती है, जिसे जीवात्मा कहते हैं। जब तक शरीर में वह सत्ता रहती है, शरीर के सब कार्य स्वयं होते रहते हैं। शरीर से उस सत्ता के निकल जाने पर सब कार्य होने स्वयं बन्द होजाते हैं। क्या आपने या किसी वैज्ञानिक ने आज तक उस चेतन सत्ता को गर्भ में प्रवेश करते और शरीर से निकलते देखा है? क्या कोई वैज्ञानिक अपने विज्ञान के आधार पर उस चेतन सत्ता का कोई आकार बतला सकता है? भला सोचिये तो सही जब इन आंखों से जीवात्मा को ही नहीं देख सकते तो फिर जीवात्मा से भी अति सूक्ष्म सत्ता अर्थात् ईश्वर को इन आंखों से देखने का प्रश्न मस्तिष्क में क्यों आता है? यह तो आपको भी मानना ही पड़ेगा कि जैसे शरीर में जीवात्मा है जो शरीर को चलाता है, ऐसे ही एक अनन्त, अनादि और सर्व शक्तिमान् शक्ति है जो चेतन और अति सूक्ष्म है, जो समस्त ब्रह्माण्ड के कण-कण (Cell) में विराजमान है। वही चेतन शक्ति ब्रह्माण्ड के सब कार्य अपने ज्ञान और अटल नियम से चलाती रहती है। इसी लिए यह कहना पड़ेगा, चाहे कोई न भी कहना चाहे, कि ईश्वर है और अवश्य है।

प्रश्न--जब आपके कहने के अनुसार ईश्वर देखे जाने के योग्य नहीं है, तो फिर ऐसे ईश्वर पर विश्वास जमाना निराधार है ?

उत्तर--यह किसने कहा कि ईश्वर देखे जाने योग्य नहीं ? हां ! यह तो कह सकते हैं, कि उसका देखना आसान नहीं है। उसके देखने के लिए पहलवान की भांति तैयारी करनी पड़ती है। यम और नियम पर चलकर धर्मानुकूल पवित्र हृदय और पवित्र जीवन बनाना पड़ता है। याद रहे ! कि ईश्वर का देखना बच्चों का खेल नहीं है। सत्य को धारण करके कुसंग, कुसंस्कार और वासनाओं से पृथक रहकर तथा उत्तम और निष्काम कर्म करने से जीवात्मा को ईश्वर का अनुभव होता है।

चूंकि ब्रह्म अति सूक्ष्म है, इसलिए सब कुछ जान लेने के पश्चात् ब्रह्म जाना जाता है। या यूं कहिए कि ब्रह्म के जानने से पूर्व जीवात्मा और प्रकृति का जान लेना आवश्यक है। ब्रह्म समाधि, सुषुप्ति और मुक्ति इन तीन दशाओं में स्पष्ट अनुभव होता है। इन तीन दशाओं में प्रकृति से जीवात्मा का सम्बन्ध नहीं रहता। शेष दशाओं में प्रकृति से सम्बन्ध रहता है, इसलिए ईश्वर नहीं जाना जाता।

मनुष्य के पास किसी पदार्थ को जानने के लिए यन्त्र अर्थात् इन्द्रियां और मन होते हैं। इन्द्रियां और मन प्राकृतिक हैं और ब्रह्म अप्राकृतिक है, इसीलिए प्राकृतिक इन्द्रियां और मन अप्राकृतिक ब्रह्म का अनुभव नहीं कर सकता। अतः ईश्वर इन्द्रियों और मन का विषय नहीं है, वरन् जीवात्मा का विषय है।

संसार में ऐसी भी तो बहुत सी वस्तुयें मौजूद हैं, कि जिनका कोई रूप नहीं है, जैसे—मन, बुद्धि, सुख, दुःख, दर्द,

पीड़ा, काल आदि। किन्तु इन सब वस्तुओं के अस्तित्व को तो आप मानकर अनुभव करते हैं, मगर ईश्वर के अस्तित्व के मानने में न जाने आप पर क्या आपत्ति आजाती है ?

जगत में ऐसे और भी बहुत से पदार्थ हैं, जो मौजूद होते हुए भी इन आँखों से दिखाई नहीं देते। दिखाई न देने के कुछ कारण हैः—

(१) किसी पदार्थ के अति निकट होने के कारण जैसे आंख में लगा हुआ सुरमा।

(२) किसी पदार्थ के बहुत दूर होने के कारण जैसे अमेरिका और इंगलैंड आदि परदेश।

(३) बहुत ऊंचे चढ़ी हुई वस्तु जैसे पतंग या पत्ती आदि।

(४) किसी वस्तु के अति सूक्ष्म होने के कारण जैसे—परमाणु और अनेक प्रकार के कीटाणु।

(५) किसी वस्तु के अति स्थूल होने के कारण जैसे—समस्त हिमालय पर्वत एक साथ दिखाई नहीं देता।

(६) पर्दे के पीछे रक्खी हुई वस्तु या बैठा हुआ मनुष्य दिखाई नहीं देता।

(७) दर्पण पर काफ़ी गर्द या मैल पड़ जाने से रंग रूप दिखाई नहीं देता।

(८) आंख में रोग होजाने से दिखाई नहीं देता।

(९) कुछ वस्तुओं के एक या अधिक गुणों में समानता होने और उनको आपस में मिला देने से वे वस्तुयें अलग २ दिखाई नहीं देतीं जैसे—दूध में मिला हुआ पानी।

(१०) प्रकाश न होने के कारण जैसे—अन्धेरी रात में आंखें नहीं देख सकतीं।

(११) आंखें और प्रकाश दोनों मौजूद हों किन्तु देखे जाने वाली वस्तु एक निश्चित् स्थान पर मौजूद न हो जैसे—पुस्तक को बहुत दूर या बिल्कुल आंख से मिलाकर नहीं पढ़ सकते।

(१२) आंखें, प्रकाश, और देखे जानी वाली वस्तु निश्चित् स्थान पर मौजूद हो, तो फिर भी नहीं देख सकते, जब तक कि मन का सम्बन्ध आंखों से न हो जैसे—आंखों के सामने से कोई चीज या मनुष्य चला जाता है मगर दिखाई नहीं देता, पुस्तक के कितने ही पृष्ठ पढ़ लेते हैं किन्तु ध्यान नहीं रहता। बोले हुए शब्द भी तो दिखाई नहीं देते। अतः पता चला कि ईश्वर का दर्शन ऊपर लिखे कारणों से नहीं होता। कोई इन्द्रिय ईश्वर को प्रत्यक्ष नहीं कर सकती। प्रत्येक इन्द्रिय का कार्य अलग-अलग है। एक इन्द्री दूसरी इन्द्री का कार्य नहीं कर सकती। ब्रह्म को अनुभव करने का कार्य केवल जीवात्मा का है।

यदि कोई बुद्धि के बल या अधिक पढ़ने या सुनने या तर्क-वितर्क की युक्तियों से ईश्वर प्राप्ति करना चाहे तो नहीं कर सकता। तिलों में तेल है, किन्तु बिना पेले दिखाई नहीं देता। दही में घी है मगर बिना मथे नजर नहीं आता। गुड़ में मिठास है किन्तु बिना चखे पता नहीं चलता। जैसे—मैले कुचैले दर्पण में दृश्य का प्रतिबिम्ब साफ नजर नहीं आता, ऐसे ही जब तक आत्मा पर दोषों की गर्द पड़ी रहेगी तब तक ईश्वर दर्शन का प्रश्न उत्पन्न ही नहीं हो सकता।

प्रश्न—आपने जो अभी तीन दशाओं में ईश्वर का अनुभव होना बतलाया है, क्या उनमें कुछ अन्तर है ?

उत्तर—हाँ ! इन तीनों दशाओं में कुछ भेद है:—

(१) जब शरीर और ज्ञान सहित जीवात्मा को ब्रह्म का अनुभव होता है उस दशा का नाम समाधि है।

(२) जब शरीर सहित और ज्ञान रहित जीवात्मा को ब्रह्म का अनुभव होता है उस दशा का नाम सुषुप्ति है।

(३) जब शरीर रहित और ज्ञान सहित जीवात्मा को ब्रह्म का अनुभव होता है उस दशा का नाम मुक्ति है।

प्रश्न--आपके कथनानुसार जीवात्मा चेतन है और अभी आपने यह भी कहा था कि जीवात्मा में ज्ञान का अभाव कभी नहीं होता। अब आप यह कह रहे हैं कि सुषुप्ति दशा में ब्रह्म का अनुभव, ज्ञान रहित होता है। इन दोनों बातों में कौनसी बात सत्य है ? ज्ञान के बिना अनुभव कैसे हो सकता है ?

उत्तर--दोनों बातें सत्य हैं। ज्ञान जीवात्मा को दो अवस्थाओं में होता है। एक तो उस अवस्था में जब गुण और गुणी दोनों दिखाई देते हों। दूसरे उस दशा में जब गुण तो मौजूद हो मगर गुणी दिखाई न देता हो। इस उदाहरण से भली भांति समझ लीजिए। मान लो, हमारे सामने कस्तूरी रक्खी है, हम अपनी आँखों से उसको देख रहे हैं और नाक से उसकी सुगन्धि ले रहे हैं, एक दशा तो यह हुई। दूसरी दशा इस प्रकार समझिए, कि कस्तूरी मृग की नाभि में मौजूद है और वह उसकी सुगन्धि भी अनुभव कर रहा है, किन्तु वह उसको दिखाई नहीं देती। वह मृग कस्तूरी का आनन्द भी लेता है और सुगन्धि भी अनुभव करता है, लेकिन अज्ञानता के कारण वह उसकी खोज में इधर-उधर कूदता फांदता फिरता है। बस ऐसा ही सुषुप्ति दशा में होता है।

प्रश्न—इस जगत में सब प्रकार के सुख मौजूद हैं वे कौनसे अधिक सुख हैं, जो सांसारिक सुखों की अपेक्षा ब्रह्म के अनुभव से जीवात्मा को प्राप्त होते हैं ?

उत्तर—आपने शब्द 'सुख' गलत प्रयोग किया है। सुख नहीं आनन्द प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि सुख और आनन्द में अन्तर है। जब मन किसी विषय के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करके कुछ समय के लिए स्थिर होजाता है उसे सुख कहते हैं। जब मन शुद्ध करके जीवात्मा ब्रह्म के साक्षात् आनन्द को ग्रहण करता है उसे आनन्द कहते हैं। सुख अनित्य होता है और आनन्द नित्य होता है। परमेश्वर का स्वाभाविक गुण आनन्द है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप है। परमेश्वर के अनुभव होजाने पर जो आनन्द आता है वह सांसारिक पदार्थों में से किसी भी उत्तम से उत्तम पदार्थ के भोगने से प्राप्त नहीं हो सकता। उस आनन्द का वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता, वरन् योगी, भक्त और मुक्त आत्मायें ही उस परम आनन्द का आनन्द अनुभव करते हैं। यही कारण है कि योगी और भक्त जन सांसारिक पदार्थों के अनित्य सुख को छोड़कर नित्य आनन्द की प्राप्ति के लिए जप, तप, भूख, प्यास, सर्दी और गर्मी आदि का कष्ट उठाते हैं। उन योगी और भक्तों को यह निश्चय होजाता है, कि सांसारिक पदार्थों के अनुचित भोगों से जीवात्मा अशुद्ध होता है और भोगी भोगों की खुराक बन जाता है। किन्तु उस परम पिता परमेश्वर की शरण में जाकर अमृत धाम तथा नित्य आनन्द प्राप्त होता है। क्या अनित्य सुख को छोड़कर और कुछ कष्ट उठाकर नित्य आनन्द प्राप्त करने का प्रयत्न करना कोई घाटे का सौदा है ?

प्रश्न--यदि हम ईश्वर को न मानें तो इसमें आपका और ईश्वर का तो कोई हरज नहीं है ?

उत्तर -हमारा या ईश्वर का तो इसमें कोई भी हरज नहीं। किन्तु आप अपने हरज के लिए स्वयं सोचें। प्रत्येक जीव-आत्मा कार्य करने और सोचने समझने में स्वतन्त्र है। यदि आप अपने माता पिता को माता पिता न मानें और उनकी आज्ञा का पालन न करें तो इसमें भी आप स्वतन्त्र हैं। बहुत से कपूत ऐसे भी तो होते हैं जो अपने माता पिता को मारते पीटते और गालियां देते हैं। इस संसार में भी तो राजा का विधान अर्थात् आज्ञा न मानते हुए अपराध करते हैं। ऐसा करने में भी वे स्वतन्त्र हैं। किन्तु आपको ज्ञात है कि राजा का विधान तोड़ने और आज्ञा भंग करने का क्या परिणाम होता है ?

आपको याद रखना चाहिए कि ईश्वर महाराजाओं का भी महाराज है। उसने अपने लिए नहीं, क़िन्तु मनुष्य मात्र के हित और उद्धार के लिए सृष्टि की आदि में अपना आवश्यक विधान दे दिया था। यदि आप ईश्वर को नहीं मानते और उसके विधान को तोड़ते हैं तथा आज्ञाओं को भंग करते हैं, तो इसमें ईश्वर का कोई हर्ज नहीं, आप अपने लिए ही दुःख और क्लेश का बीज बो रहे हैं।

इसके अतिरिक्त जो वस्तु मौजूद है उसको मौजूद न मानने से अज्ञानता का दोष है। ईश्वर को न मानने से हृदय में उस सर्व शक्तिमान, सर्व व्यापक और अन्तर्यामी का भय नहीं रहता। भय न रहने से पाप कर्म में वृद्धि होने की सम्भावना होती है। ईश्वर और उसके विधान को न मानने से मनुष्य को ज्ञान-अज्ञान अर्थात् अच्छे और बुरे कार्यों की पहचान नहीं

रहती। ईश्वर और उसके विधान को न मानने से मनुष्य प्रकृति के चक्कर में बुरी तरह फंसकर बहुत से दोषों में लिप्त होजाता है। इन दोषों के अतिरिक्त और भी बहुत से दोष हैं।

प्रश्न--आपने ईश्वर के अस्तित्व के बारे में कुछ इधर उधर की युक्तियां देकर हमें निश्चय कराने का प्रयत्न तो किया है, किन्तु क्या बतायें हमें तो ईश्वर के अस्तित्व के विषय में फिर भी शंका ही है ?

उत्तर--कोई बात नहीं हमने आपकी शंका मिटाने का निश्चय किया हुआ है। आगे चलकर आपकी शंका का निवारण हो जायेगा, और आप अपने मुख से यह कहे बिना नहीं रहेंगे कि ईश्वर है और अवश्य है। आओ, थोड़ी देर के लिए ईश्वर विषय को यहीं छोड़कर सृष्टि उत्पत्ति के विषय में कुछ बातचीत कर लें। मुझे पूरा विश्वास है कि सृष्टि उत्पत्ति के विषय में बातचीत करने से आपकी शंका जाती रहेगी।



तृतीय खण्ड

प्रश्न——सृष्टि उत्पत्ति के विषय में बातचीत करने से कोई लाभ नहीं है। अमरीका, योरुप और रूस आदि देशों के विद्वान्, दार्शनिक और वैज्ञानिक बार २ निरीक्षण कर करके घोषणा करते चले आये हैं कि संसार की समस्त चेतन और अचेतन वस्तुयें प्रकृति और उसमें काम करने वाले प्राकृतिक नियमों (Natural Laws) से स्वयं उत्पन्न होजाती है। उन्हें उत्पन्न करने के लिए किसी ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। इससे अधिक आप जो कुछ भी कहेंगे वह सब समय का नष्ट करना ही होगा।

उत्तर——समय का नष्ट करना नहीं होगा, किन्तु आपके ज्ञान-विज्ञान में वृद्धि होगी। जहां अमरीका और योरुप आदि देशों के दार्शनिक और वैज्ञानिक ऐसी घोषणा कर चुके हैं, वहां भारत, अमरीका और योरुप आदि देशों के विद्वान् अपने बार २ के निरीक्षण से यह भी तो घोषणा कर चुके हैं, कि प्रकृति जड़ पदार्थ है, उसमें स्वयं कार्य करने की शक्ति नहीं है। इस ब्रह्माण्ड को रचने वाली और अपने अटल नियमों में रखने वाली कोई ज्ञानवान और चेतन शक्ति अवश्य है।

प्रश्न—संसार के सभी उच्च-कोटि के विद्वानों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकों ने प्रकृति को जगत का निमित्त कारण और उपादान कारण प्रबल युक्तियों से सिद्ध करके निश्चय करा दिया है, कि इस सृष्टि को रचने और इसका कार्य चलाने के लिए किसी ईश्वर नाम की शक्ति की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकाश

के युग में सब पढ़े लिखे नौजवान लड़के और लड़कियां इन पुस्तकों को पढ़कर मनन करने के पश्चात् ईश्वर के जंजाल से निकलकर सीधी सच्ची नास्तिक विचार-धारा के समर्थक बनते जारहे हैं।

उत्तर—आपके उन प्रसिद्ध विद्वानों की नास्तिक विचार धारा का अपनी आस्तिक विचार-धारा की अकाट्य युक्तियों से बहुत से प्रसिद्ध विद्वान्, दार्शनिक और वैज्ञानिक पुराने समय से खण्डन ही नहीं धज्जियां उड़ाते चले आये हैं। आप उन नास्तिक प्रसिद्ध विद्वानों के नाम बतलाइये और मैं उन आस्तिक विद्वानों के नाम बतलाऊंगा कि जिन्होंने नास्तिक विचारधारा की धज्जियां उड़ाई हैं। रहा आपका यह कहना कि पढ़े-लिखे लड़के और लड़कियां नास्तिक विचारधारा के समर्थक बनते जारहे हैं, यह सही नहीं है। कुछ कुटुम्ब ऐसे अवश्य हैं, कि जिनमें लड़के और लड़कियों की शिक्षा दीक्षा धर्मानुकूल नहीं होती। उन कुटुम्बों में अधिकतर खाना-पीना और रंग-रेलियां मनाना ही जीवन का ध्येय समझा जाता है। वहां तो केवल लोक की ही चिन्ता होती है। परलोक का उन्हें कोई ध्यान नहीं होता। धर्म का शब्द वहां ओपरा ज्ञात होता है। ऐसे कुटुम्ब के लड़के और लड़कियां नास्तिक विचारधारा के अवश्य समर्थक बनते जारहे हैं। किन्तु जिन घरों में बच्चों की शिक्षा-दीक्षा धर्मानुकूल होती है, वहां नास्तिक विचार धारा पर भी तो नहीं मार सकती।

प्रश्न—लीजिये, मैं उन प्रसिद्ध विद्वानों के नाम बतला रहा हूं, जिन्होंने ईश्वर की मनघड़न्त सत्ता का पूर्ण रूप से खण्डन करके संसार के समक्ष रखा है। आप उनकी लिखी हुई पुस्तकें पढ़कर देख तो लें—वृहस्पति, गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, अनौक्समैनस (Anaximenes), हीराक्लीटस

(Heraklites), इमपोडोक्लीस (Empedokles), जैनो (Zeno), एपीक्यूरस (Epicurus), ल्युक्रोटियस (Leucretious), डैमोक्रीटस (Demokritos), टोलैंड (Toland), मैथ्यूटिन्डल (Mathew Tindal), वालटेयर (Valtaire), हालबॉक (Holbock), लालपास, हैक्सले (Huxley), हैकल (Haeckel), बफन (Buffon), ह्यूम (Hume), मंस्टरबर्ग (Munsterberg), क्लीफोर्ड (Cliford), मेकेब (Mecabe), टिंडेल (Tindal), रसल (Russel), हरबर्ट स्पेन्सर (H. Spencer), ड्यूबास रैमांड (Dubais Remond), कलार्क (Clarke), लामार्क (Lamark), डार्विन (Darwin), मॉरगन (Morgan), एलेक्जेन्डर (Alexander) आदि। कम्युनिष्ट देशों के सब कम्युनिस्ट विद्वान् ईश्वर की सत्ता से इंकार करते हुए उसका प्रभाव मिटा रहे हैं।

उत्तर—वेद, उपनिषद्, दर्शन, गीता, रामायण तथा अन्य हजारों मान्य ग्रन्थों से ईश्वर की सत्ता पूर्ण रूप से सिद्ध होती है। कणाद मुनि जिन्होंने वैशैशिक दर्शन बनाया, गौतम मुनि जिन्होंने न्याय दर्शन रचा, कपिल मुनि जिन्होंने सांख्य दर्शन लिखा, पातञ्जलि मुनि जिन्होंने योग दर्शन की स्थापना की, व्यास मुनि जिन्होंने उत्तर मीमांसा अर्थात् वेदांत लिखकर उपस्थित किया, जैमिनी मुनि जिन्होंने पूर्व मीमांस तैयार किया। यह छः दर्शन की पुस्तकें हैं, इनमें हरेक रचयिता ने अपनी २ अकाट् युक्तियों से ईश्वर की सत्ता सिद्ध की है। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश आदि पुस्तकों में संसार के सभी दार्शनिकों विद्वानों और वैज्ञानिकों की नास्तिक विचार धाराओं का खण्डन करते हुए अपनी अकाट् युक्तियों द्वारा आस्तिकवाद का समर्थन किया। गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी ने वृहस्पति की नास्तिक

विचार धारा इच्छाओं की पूर्ति (satisfaction of desires) का खण्डन करते हुए अधिकतर चरित्र को ऊंचे उठाने पर ही बल दिया था। उन्होंने दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टि से ईश्वर की सत्ता पर अधिक ध्यान नहीं दिया था। स्वामी शंकराचार्य ने ईश्वर सत्ता को सिद्ध करते हुए जैन और बौद्ध धर्मों की ईश्वर को सृष्टि कर्ता न मानने की विचार-धारा का, जो उन धर्मों में प्रचलित होगई थी, खण्डन किया। इसके अतिरिक्त भारत के और भी ऋषि, महर्षि, विद्वान् और आचार्य ईश्वर की सत्ता का बराबर समर्थन करते चले आये हैं।

देखने में आता है कि हमारे देश के पढ़े-लिखे लोग योरुप आदि देशों के विद्वानों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकों की सम्मति को अधिकतर प्रधानता देते हैं। इसलिए आपके समक्ष उन प्रसिद्ध और चोटी के कुछ दार्शनिकों, वैज्ञानिकों और आचार्यों का नाम प्रस्तुत करना आवश्यक समझता हूँ कि जिन्होंने ईश्वर, जीव और प्रकृति की सत्ता को नित्य और अमर सिद्ध करते हुए ईश्वर को सृष्टि का रचयिता बतलाया। सुकरात (Socrates), अफलातून (Plato), अरस्तु (Aristotle), प्लाटिनस (Platinus), एडवर्ड हुल (Edward Hull), मिस्टर लिंक (Mr. Link), व्हाइट हैड (White Head), हिविसन (Hewison), आर. डैकार्टस (R. Descartes), मिस्टर बेली (Mr. Byle), मि० लॉक (Mr. Locke), सर आइज़क न्युटन (Sir Isaac Newton), मि० बर्कले (Mr. Berkeley), मि० कैंट (Mr. Kant), आर्थर शोपनहावर (Arther Schopenhauer), सर डब्ल्यू क्रूकस (Sir W. Crookes), प्रोफेसर कोहन (Prof. Cohan), मि० मेयर्स (Mr. Mayers), डा० जैप (Dr. Jap), मि० डंकन (Mr.

Duncan), प्रो० जी० स्मिथ (Prof. G. Smith), डा० मोमेरी (Dr. Momerie), डा० साइम (Dr. Syme), मि० न्यूमैन स्मिथ (Mr. Newman Smith), मि० एच० शोले (Mr. H. Sholly), मि० ई० कारपेन्टर (Mr. E. Carpenter), मि० लॉज (Mr. Loze), मि० डब्ल्यू जेम्स (Mr. W. James), मि० ग्रीन (Mr. Green), मि० ब्रेडले (Mr. Bradley), मि० टैगार्ट (Mr. Taggart), मि० डेकिन्सन (Mr. Deckinson), आदि बहुत से विद्वान्, फिलासफर और वैज्ञानिकों ने ईश्वर, जीव और प्रकृति को नित्य और अमर माना है तथा एक मत होकर कहा है कि उनका नाश कभी नहीं हो सकता। ईश्वर प्रकृति से सृष्टि रचता है। जीव उसकी प्रजा है।

प्रश्न—यह तो सभी को दीख रहा है कि यह जगत, प्रकृति अर्थात् अग्नि, जल, पृथ्वी और वायु की गति तथा स्वभाव (nature) से स्वयं उत्पन्न होकर मशीन की भांति चलता रहता है और स्वयं ही विगड़ता रहता है। इसके बनाने वाला कोई नहीं। जैसे कुछ बिना नशे के पदार्थों के इकट्ठा हो जाने से नशे वाली शराब स्वयं बन जाती है, अथवा चूना और हल्दी के मिलाप से रोली स्वयं बन जाती है, ऐसे ही भिन्न-भिन्न परमाणुओं के संयोग-वियोग से जगत की समस्त वस्तुयें बनती और बिगड़ती रहती हैं।

उत्तर—पहले आप यह जान लें कि जगत के अर्थ क्या हैं। जगत के अर्थ चंचल के हैं। देखना यह है कि जगत में यह गति या चंचलता कहां से आई है? यह गति क्या है? और इसका क्या रूप है? गति का रूप उत्पत्ति, वृद्धि और ह्रास है। प्रकृति जो जड़ पदार्थ है उसमें अपनी स्वतन्त्र शक्ति तो है नहीं

और न ही हो सकती है। उसमें जो शक्ति आपको प्रतीत होरही है, वह परमात्मा ने उत्पन्न करके उसको नियमानुसार गति करने की शक्ति दी है। मनुष्य में भी इतनी शक्ति नहीं है कि वह समस्त जगत को शक्ति दे सके। प्रकृति में ज्ञान पूर्वक काम करने की शक्ति नहीं है, इसलिए वह किसी नियम पूर्वक कार्य करने वाले पदार्थ की उत्पत्ति का कारण नहीं हो सकती। प्रकृति नियमानुसार चलने वाली तो हो सकती है, किन्तु स्वयं चलाने वाली नहीं हो सकती। जगत में सब कार्य ज्ञान सहित दिखाई पड़ते हैं, जैसे ऋतुओं का परिवर्तन, चन्द्र सूर्य, और ग्रह आदि भूगोलों की गति, तथा समस्त ब्रह्मांड का नियमानुकूल प्रबन्ध साफ २ बतला रहा है, कि यह जगत किसी महान ज्ञानी ने अपने ज्ञान अनुकूल और अटल नियमानुसार उत्पन्न किया है। प्रकृति में जब स्वयं बनना, बिगड़ना और स्थिर रहना यह तीन प्रकार की शक्ति नहीं हैं, तो फिर प्रकृति से स्वयं जगत की उत्पत्ति, स्थिरता और विनाश कैसे हो सकता है? इस कार्य रूप सृष्टि में तीन नियम स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं—सृष्टि का हरेक पदार्थ नियमपूर्वक परिवर्तन शील है, प्रत्येक जाति के प्राणी अपनी जाति के अन्दर उत्तम, मध्यम और निकृष्ट स्वभाव वाले होते हैं, सृष्टि में जो भी कार्य होरहा है, वह सब नियमित, बुद्धि पूर्वक और आवश्यक है।

प्रकृति जगत का उपादान कारण (इल्लतेमद्दी) है, निमित्त कारण (इल्लतेफ़ाईली) नहीं है। यदि आपके कहने के अनुसार प्रकृति में गति भी मान लें, तो फिर भी उससे जगत की स्वयं उत्पत्ति असम्भव है, क्योंकि दो परमाणुओं में यदि चलने की शक्ति समान हो और वह दोनों अलग २ दो ओर चलें तो संयोग असम्भव है और यदि गति शून्य मानें तो भी संयोग नहीं हो

सकता। बिना संयोग सृष्टि नहीं बन सकती। उत्पत्ति और विनाश दो गुण आपस में विरुद्ध हैं, यह दोनों विपरीत गुण जगत के किसी एक पदार्थ में नहीं पाये जाते, इसलिए आपको स्वीकार करना चाहियें कि प्रकृति से जगत की स्वयं उत्पत्ति या विनाश नहीं हो सकता।

यदि प्रकृति में गति की स्वाभाविक क्रिया (तहरीक़ बिलज़ात) भी मान ली जाये तब भी कोई पदार्थ चलने वाला और कोई पदार्थ न चलने वाला नहीं हो सकता।

यदि मैं आपसे पूंछू कि प्रकृति द्रव्य (मौसूफ़) है या गुण (सिफ़त) चेतन है या जड़। सक्रिय है या अक्रिय। इसकी क्रिया स्वाभाविक और ज्ञान पूर्वक है या नहीं तो मुझे विश्वास है कि आप इनमें से किसी एक बात का भी उत्तर देकर सन्तुष्टी नहीं करा सकते।

जो लोग मनन करने का कष्ट नहीं करते और इधर उधर से किसी नास्तिक की लिखी कोई पुस्तक पढ़ लेते हैं, तो तुरन्त यह कहने लगते हैं, कि जगत का कर्ता कोई नहीं है, वरन् प्रकृति से स्वयं उत्पन्न होता है। मूर्ख लोग ही घड़ी को चलती देखकर यह कह सकते हैं, कि घड़ी के पुर्जे स्वयं गति या आकर्षण शक्ति से चल रहे हैं। किन्तु बुद्धिमान गहराई तक पहुंचकर यह कहते हैं कि यह घड़ी स्वयं प्रकृति से बनकर नहीं चल रही है, किन्तु किसी चतुर घड़ी साज ने यह गति उत्पन्न की है, जो नियमानुसार समय बतला रही है। यदि इंजिन की क्रिया से प्रेरित होकर एक गाड़ी दूसरी गाड़ी को गति दे, तो वह गति उस पहली गाड़ी का धर्म न होगा, किन्तु वह गति इंजिन की गति के कारण होती है। इसी प्रकार सौर जगत और सब

वस्तुओं में ब्रह्म की शक्ति से गति होरही है। यह गति जो आपको प्रतीत होरही है, यह प्रकृति का अपना निजी गुण नहीं है। इसलिए मानना पड़ता है कि जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय इन तीन प्रकार की गतियों को कोई चेतन स्वरूप, सर्व शक्तिमान, सर्व अन्तर्यामी और सर्व ज्ञानी अवश्य दे रहा है। उसी को हम ईश्वर वादी ब्रह्म आदि नामों से याद करते हैं।

प्रश्न—जगत में एक प्रकार का ताप काम कर रहा है, जिसके कारण प्रकृति में गति उत्पन्न होती रहती है और जगत की सब वस्तुयें स्वयं बनती रहती हैं। दूसरी प्रकार का भी एक ताप है, जो इनट्रोफी नाम से पुकारा जाता है। जब प्रथम प्रकार के ताप पर दूसरी प्रकार का ताप अपना प्रभाव जमा लेता है, तो प्रथम प्रकार का ताप समाप्त होजाता है और जगत की वस्तुयें छिन्न-भिन्न होजाती हैं।

उत्तर—ईश्वर की सत्ता को न मानने के लिए आप न जाने क्या २ कल्पनायें कर रहे हैं। इन कल्पनाओं से आप प्रकृति से स्वयं उत्पत्ति और विनाश सिद्ध करने में सफल नहीं हो सकते। यदि मैं आपके दोनों प्रकार के तापों को मानकर आपसे यह पूंछू, कि प्रथम प्रकार के ताप के समाप्त होजाने और जगत के सब पदार्थ छिन्न-भिन्न होजाने के पश्चात् यह जगत फिर उत्पन्न होगा या नहीं? यदि उत्पन्न होगा तो जगत के उत्पन्न करने वाला प्रथम प्रकार का ताप जिसका प्रभाव दूसरी प्रकार का ताप मिटा चुका होगा वह कहां से आयेगा? और यदि यह कहो कि नाश होजाने के पश्चात् यह जगत उत्पन्न नहीं होगा तो दूसरी प्रकार के ताप का क्या कार्य होगा? कुछ सोचकर तो कल्पना किया करो?

वास्तव में बात यह है कि जब सृष्टि रची जाती है, तो परमात्मा अपनी अनन्त शक्ति और ज्ञानमय से परमाणुओं में अपने नियमानुसार ताप और हलचल उत्पन्न कर देता है। उससे परमाणुओं में गति उत्पन्न होकर जगत के समस्त पदार्थ ईश्वर के नियमानुकूल और यथा योग्य कार्य करने लगते हैं। फिर जब प्रलय का समय आता है तो परमात्मा अपनी अनन्त शक्ति से ऐसा ताप उत्पन्न कर देता है, कि जिससे समस्त पदार्थ छिन्न-भिन्न होजाते हैं। इन दोनों प्रकार के तापों को उत्पन्न करने की शक्ति परमात्मा में विराजमान है।

प्रश्न—प्रकृति में शक्ति और गति (energy and motion) है और यह शक्ति प्रकृति का गुण और स्वभाव है। इसी से संसार की सब वस्तुयें उत्पन्न होजाती हैं। उसी शक्ति में न्यूनता आ जाने से संसार के पदार्थ टूट-फूट जाते हैं।

उत्तर—ज्ञात होता है कि आप प्रकृति की परिभाषा नहीं जानते। प्रकृति परमाणुओं (Atoms) के समूह का नाम है। परमाणु प्रकृति का वह भाग है कि जो विभाजित नहीं हो सकता। याद रहे परमाणुओं का अपना निजी कोई विशेष आकार नहीं होता और न ही उनमें कोई स्वाभाविक गति होती है। वह सर्वथा ठोस होते हैं। सृष्टि उत्पत्ति से पहले जब प्रकृति कारण रूप होती है, उस दशा में उसका वर्णन केवल इतना ही हो सकता है, कि उसकी सत्ता है और वह जगत की उत्पत्ति का उपादान कारण है। प्रकृति का लक्षण वर्णन करने का समय तो सृष्टि उत्पत्ति के समय से आरम्भ होता है। परमाणुओं से मिल कर प्रकृति बनने पर उसमें आरम्भिक विशेष गुण (Primery qualities) के अतिरिक्त कुछ नैमित्तिक गुण (Secondary

qualities) भी आजाते हैं। नैमितिक गुण भिन्न २ प्रकार के परमाणुओं के मिलाये जाने से आते हैं। तभी तो भिन्न २ रंग-रूप और ताप आदि गुण उत्पन्न कर दिये जाते हैं, किन्तु नैमितिक गुण आरम्भिक गुणों पर ही निर्भर होते हैं। परमाणुओं मे मिलकर प्रकृति बन जाने पर तीन गुण अर्थात् सत, रज और तम उत्पन्न होजाते हैं। किन्तु एक गुण दूसरे गुण का नाश नहीं कर सकता। इन तीनों गुणों के संयोग में अधिकता या न्यूनता कर देने से ही भांति २ के परिवर्तन होजाते हैं और यह विचित्र ब्रह्माण्ड बन जाता है। प्रकृति स्वयं जड़ और अचेतन है। इसलिए उससे स्वयं बनना, स्थिर रहना और बिगड़ना असम्भव है।

परमाणुओं का स्वभाव स्वयं मिलने और अलग होने का नहीं है। किन्तु उनमें स्वाभाविक गुण ऐसा तो है, कि यदि उन्हें कोई मिलादे तो एक विशेष वस्तु विशेष रंग रूप और ताप (Energy) आदि गुणों वाली बन जाये या उन्हें कोई अलग कर दे तो वह वस्तु टूट फूट कर विनाश होजाये। इसलिए सिद्ध है कि यह नाना प्रकार की वस्तुयें परमाणुओं को अपने ज्ञान से मिलाकर और प्रयोग में लाकर बनाने वाला कोई सर्व शक्तिवान् और ज्ञानवान आदि गुणों वाला अवश्य है। क्या आपने संसार में कोई ऐसी वस्तु देखी है कि जो बिना कर्ता के स्वयं प्रकृति से बन जाती है? जब नहीं देखी तो यह संसार बिना कर्ता के कैसे उत्पन्न हो सकता है?

प्रश्न--ब्रह्म को सृष्टि बनाते तो किसी ने देखा नहीं। किन्तु प्रकृति प्रत्यक्ष होने से उसके कार्य बनते बिगड़ते सब लोग देखते हैं। तो फिर प्रकृति से जगत की उत्पत्ति क्यों नहीं मानी जा सकती?

उत्तर--बुद्धिहीन लोग ही ऐसा मान सकते हैं। जो लोग वस्तु को ही उपादान कारण और निमित्त कारण स्वीकार करते हैं, वह असम्भव को सम्भव बनाने के लिए बेकार हाथ पांव मारते हैं। प्रकृति में घड़ा बनाने की शक्ति (Energy) मौजूद है, तो बिना कुम्हार के प्रकृति स्वयं घड़ा क्यों नहीं बना देती ? चांदी सोने में आभूषण बनाने की शक्ति मौजूद है, किन्तु बिना सुनार के बनाये आभूषण क्यों नहीं बन सकते ? यह बात तो निश्चित् ही है कि उपादान कारण और निमित्त कारण के बिना कोई पदार्थ स्वयं नहीं बन सकता।

प्रश्न--प्रकृति में आकर्षण शक्ति है। उस आकर्षण शक्ति से ही प्रकृति सृष्टि उत्पन्न कर देती है। उत्पत्ति करने के लिए किसी ईश्वर की आवश्यकता नहीं पड़ती।

उत्तर--यह हम पहले बता चुके हैं कि प्रकृति बहुत से परमाणुओं के संग्रह का नाम है। प्रकृति को माया या भूत भी कहते हैं। सब परमाणु आपस में एक जैसी आकृति के हैं। इसलिए वह आकर्षण शक्ति से आपस में मिलकर सृष्टि उत्पत्ति नहीं कर सकते। नियम यह है कि बड़ी वस्तु छोटी वस्तु को आकर्षण शक्ति से खींच सकती है, जैसे सूर्य अपनी आकर्षण शक्ति से चन्द्रमा और पृथ्वी आदि को खींचे हुए हैं। समान वस्तुयें एक दूसरी को आकर्षण शक्ति से कदाचित् नहीं खींच सकतीं। यदि कोई मूर्ख यह कहे कि घड़ी के पुर्जे एक दूसरे पुर्जे के आकर्षण के कारण ठीक टाईम दे रही है, तो कोई बुद्धिमान इसे स्वीकार नहीं करेगा। बुद्धिमान तो यही कहेगा कि यह आकर्षण घड़ी साज का किया हुआ है। यह घड़ी चाबी देने से चल रही है। इसी प्रकार सूर्य, चन्द्रमा नक्षत्र आदि में जो

आकर्षण शक्ति है वह उसी महान कारीगर अर्थात् परमात्मा की उत्पन्न की हुई है। उसी की चाबी देने से यह सूर्यादि भूगोल अपने २ अटल नियमानुसार गति कर रहे हैं।

प्रश्न—यदि जगत को नित्य मान लिया जाये और यह कह दिया जाये कि यह सदा से इसी प्रकार चला आरहा है और इसी प्रकार चलता रहेगा। जगत की समस्त वस्तुयें अपने स्वभाव से बनती और बिगड़ती रहती हैं, तो ऐसा मान लेने में तो कोई दार्शनिक या वैज्ञानिक त्रुटि नहीं है?

उत्तर--मानने को तो आप चाहे जो मान लें। आप स्वयं स्वतन्त्र हैं। किन्तु जो बात स्वयं मानो और अन्य से मनवाने की चेष्टा करो, तो उसमें कोई तत्व होना चाहिए। किन्तु आपकी यह विचार धारा दर्शन और विज्ञान की दृष्टि में सर्वथा असत्य है। जगत मिश्रित वस्तुओं के समूह का नाम है। वायु, अग्नि, जल और संसार के सभी पदार्थ बहुत से परमाणुओं के मिश्रण और परिवर्तनों के पश्चात् बनते हैं। मिश्रित पदार्थ नित्य नहीं हो सकते। वह अनित्य और नाशवान होते हैं। वह पदार्थ कभी न कभी अवश्य बने हैं। इसलिए उनका विनाश भी अवश्य होगा। जब जगत रचा हुआ है तो इसका रचयिता भी स्वीकार करना पड़ेगा। प्रकृति के स्वभाव के विषय में हम पीछे उत्तर दे आए हैं।

प्रश्न--सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, पृथ्वी और अन्य पदार्थों में अपनी नित्य निजी शक्ति (Spirit, energy) या सूक्ष्म भाग होता है। इसी से संसार का सब कार्य चलता रहता है और पदार्थ बनते व बिगड़ते रहते हैं।

उत्तर--यह हम अभी सिद्ध कर चुके हैं कि संसार का कोई पदार्थ, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र और पृथ्वी आदि भूत नित्य नहीं है। वह सब परमाणुओं के मिश्रण और परिवर्तनों के पश्चात् बनते हैं। इसलिए उनमें अपनी निजि शक्ति (Energy) नित्य नहीं होती। उनके बनाने वाला उनमें वह शक्ति उत्पन्न करता है। किन्तु उनकी वह शक्ति अन्धी अर्थात् ज्ञान रहित होती है। वह ज्ञान सहित क्रिया नहीं कर सकती। इसलिए मानना पड़ता है कि उन सब भूगोलों, भूतों और पदार्थों को गति देने वाली कोई भी अति सूक्ष्म ज्ञानवान शक्ति अवश्य है। उस सूक्ष्म और ज्ञानवान शक्ति को ही हम ईश्वरवादी ईश्वर कहते हैं।

प्रश्न--यह कैसे सिद्ध होता है कि सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र आदि ईश्वर ने बनाये हैं और ईश्वर की ज्योति से ही प्रकाशित हैं ?

उत्तर—यह तो हम अभी सिद्ध कर चुके हैं, कि संसार के समस्त पदार्थ भूत और नक्षत्र आदि परमाणुओं के मिश्रण से बने हैं। मिश्रित पदार्थ नित्य नहीं होता। इसलिए उसके बनाने वाला भी कोई अवश्य होना चाहिए। वैज्ञानिकों से पूछकर सन्तुष्टी कर लीजिए कि दीपक में जो प्रकाश है वह उसका अपना निजी प्रकाश नहीं है। किन्तु वह प्रकाश सूर्य से उत्पन्न होता है। सूर्य में जो प्रकाश है उसमें भी अपना निजी प्रकाश नहीं है। उसमें अग्नि के परमाणुओं के संयोग से प्रकाश आता है। जब अन्धा सूर्य के प्रकाश से नहीं देख सकता, तो पता चलता है कि आंखें स्वयं प्रकाश देती हैं। किन्तु साथ ही ऐसा अनुभव होजाता है कि खुली आंखों से भी नहीं देखा जाता, जब तक

मन की आंखें इन्द्रियों से सम्बन्धित न हों। बिना आंखों के भी बहुत से मनुष्य ज्ञानी होते हैं। ऐसा देखकर पता चलता कि मन स्वयं प्रकाश शील है। किन्तु साथ ही यह निश्चय हुआ कि सुषुप्ती की दशा में जीवात्मा गमन कर जाता है और मन फिर कोई कार्य नहीं करता। इसलिए कहना पड़ता है कि मन भी स्वयं प्रकाशित नहीं है, वरन् जीवात्मा प्रकाशित है, जिसकी शक्ति से मन प्रकाशित होता है। किन्तु जीवात्मा भी बिना यन्त्रों के कुछ नहीं जान सकता और यन्त्र बनाना उसके अधिकार में नहीं है, तो फिर ज्ञात हुआ कि जीवात्मा भी स्वयं प्रकाशित नहीं है। इसलिए स्वीकार करना पड़ता है कि जीवात्मा को यन्त्र देकर जानने और कर्म करने योग्य कोई चेतन शक्ति ही बनाती है। बस उसी को ईश्वरवादी प्रकाश स्वरूप परमात्मा कहते हैं।

प्रश्न—बहुत से प्रसिद्ध विद्वानों ने यह सिद्ध किया है, कि यह सृष्टि किसी ने नहीं बनाई और न इसके बनाने में किसी की आवश्यकता पड़ती है, वरन् अकस्मात (By chance or by accident) बन गई है। जैसे कुछ कीड़े मकोड़े पृथ्वी पर रेंगते २ कोई लकीर या अक्षर बना देते हैं। किन्तु उन कीड़े मकोड़ों का कोई तात्पर्य नहीं होता, कि अमुक लकीर या अक्षर बने। ऐसे ही यह सृष्टि भी तत्वों के संयोग से कहीं अच्छी और कहीं भद्दी बन गई है। यदि सृष्टि का बनाने वाला कोई ज्ञानी होता तो यह इतनी बुरी न होती जितनी दिखाई पड़ रही है। हीरे, जवाहरात, सोना, चांदी आदि बहुत से बहुमूल्य पदार्थ हैं, किन्तु उनमें कोई सुगन्धि नहीं। चन्दन में सुगन्धि है किन्तु उसका कोई फूल नहीं होता। मनुष्य की आंख में यह दोष है कि वह अन्धेरी रात में नहीं देख सकती। गुलाब के फूल में सुगन्धी है, किन्तु उसमें कांटे मौजूद हैं। इसी प्रकार संसार के और

पदार्थ भी दोषित हैं। कहीं तत्वों के अकस्मात् संयोग होजाने से भूकम्प नाश कर देता है, तो कहीं ज्वालामुखी पहाड़ फट कर उजाड़ कर देता है। कहीं बाढ़ और वबा आदि बीमारियां आकर सफाया कर देती हैं। क्या किसी ज्ञानवान रचयिता की रची हुई यह सृष्टि हो सकती है? कदाचित नहीं। इसलिए मानना पड़ता है कि सृष्टि अकस्मात ही बनती है और अकस्मात् ही बिगड़ जाती है।

उत्तर--कोई प्रसिद्ध विद्वान् ऐसी असत्य बात अपने मुख से कहना पसन्द नहीं करेगा। मित्रवर! जगत में कोई पदार्थ अकस्मात् नहीं बनता, वरन् बनाया जाता है। यह सृष्टि भद्दी नहीं है, विचित्र है। बनाने वाले ने अपनी अनन्त बुद्धि से जगत के एक २ पदार्थ में परमाणुओं का संयोग करके वह वह शक्ति और गुण उत्पन्न किए हैं, कि यदि उन शक्तियों और गुणों की कोई वैज्ञानिक आयु भर खोज करता रहे तो खोज समाप्त नहीं हो सकती।

ईश्वर ने इस ब्रह्माण्ड को भी ऐसा ही बनाया है, जैसा कि वह सदा से रचता चला आया है। बनाने वाले के नियम अटल हैं। वह अपने अटल नियमों और ज्ञान के आधार पर सृष्टि की रचना करता है। सृष्टि के पदार्थों की रचना के विषय में यदि आप कुछ जानना चाहते हैं, तो किसी वैद्य, हकीम, डाक्टर और वैज्ञानिक से पूछिये, कि बनाने वाले ने एक-एक फल-फूल, पत्ती, जड़ी-बूटी, आदि में क्या २ गुण और शक्ति निर्धारित की हैं।

बनाने वाले ने सृष्टि को आपके और मेरे दृष्टिकोण से नहीं रची, किन्तु जो पदार्थ जैसा उचित समझा वैसा ही निर्माण

किया है। प्रत्येक वस्तु की बनावट में भिन्न २ रहस्य रक्खा गया है। इसलिए कहना पड़ता है कि सृष्टि के कण २ से उस महान कारीगर की कारीगरी टपक रही है।

यदि सृष्टि में कोई नियम न होता और यह अकस्मात ही बन गई होती, तो साइन्स (विज्ञान) कभी सफल न होती। वैज्ञानिक का काम तो केवल इतना ही है, कि वह अपनी खोज कर करके यह पता लगाए कि सृष्टि के पदार्थों में कौन २ शक्ति, कौन २ नियम और क्या २ गुण उपस्थित हैं। यदि सृष्टि के पदार्थ अकस्मात ही बन गए होते तो क्या वैज्ञानिक आज उन पदार्थों की शक्तियों, नियमों और गुणों का पता लगाकर यह भांति २ के अस्त्र-शस्त्र अटम बॅम आदि बनाने में सफल हो पाते ? पदार्थों के अकस्मात बने हुए होने से वैज्ञानिकों के हाथ पल्ले कुछ न पड़ता और न वह विश्वास के साथ यह कह सकते, कि अमुक पदार्थ में यह नियम, गुण और शक्ति उपस्थित है। यदि छापेखाने का कोई कम्पोज़ीटर (Compositor) भिन्न २ अक्षरों को बिना किसी नियम के मिलाकर कम्पोज़ करता रहे, तो वह करोड़ों वर्षों में भी कोई ऐसी उत्तम पुस्तक तैयार नहीं कर सकेगा, कि जिससे कोई ज्ञान प्राप्त हो सके। कोष (Dictionery) में शब्दों का संग्रह किसी चेतन शक्ति द्वारा ही होता है। उस संग्रह में से कोई चेतन शक्ति ही शब्दों को छांट कर पुस्तक बनाती है। किन्तु आपने ऐसा तो कभी नहीं देखा, कि उस कोष में से अकस्मात् शब्द निकल २ कर कोई उत्तम पुस्तक बना देते हों। नियम पूर्वक कम्पोज़ करने से ही उत्तम पुस्तक बन सकती है। उस उत्तम पुस्तक को देखकर ही उस पुस्तक बनाने वाले की बुद्धि का बोध होता है। अब जरा सोचिए तो सही, कि परमाणुओं का एक दूसरे के साथ अकस्मात् तथा

बिना नियम मिल जुल जाने से यह सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि पदार्थ कैसे बनकर अपना २ अटल कार्य कर सकते हैं ? कभी आप किसी अच्छे डाक्टर से मिलकर अपने शरीर की बनावट के विषय में तो पूछिये कि यह अकस्मात् बना हुआ है या किसी बनाने वाले ने बुद्धि पूर्वक बनाया है।

प्रश्न--बहुत से विद्वान् ऐसा मानते हैं, कि यह सृष्टि नेचर (कुदरत, सामर्थ्य) के प्रभाव से बनती बिगड़ती रहती है। इसके बनाने और बिगाड़ने में किसी कर्ता की आवश्यकता नहीं है।

उत्तर—प्रथम तो आप यह बताइये कि नेचर के अर्थ भी आप जानते हैं या नहीं ? मेरे विचार में आप नेचर के अर्थ नहीं जानते। यदि जानते होते तो यह प्रश्न ही न करते। नेचर अर्थात् सामर्थ्य बनाने वाले की शक्ति का नाम है। यदि यह कहा जाए कि रोटी किसने बनाई और उसका उत्तर यह दिया जाए कि रसोई ने, तो यह उत्तर सुनकर लोग हँसेंगे जैसे रसोई के अन्तर्गत ही रोटी आ जाती है, ऐसे ही नेचर के अन्तर्गत संसार के सब पदार्थ आजाते हैं। इसको यों भी कह सकते हैं कि कुदरत या नेचर ही सृष्टि है और सृष्टि ही नेचर या कुदरत है। बीज का धरती में पड़कर खाद और पानी की सहायता से उगना, बढ़ना और फल देना कुदरत या नेचर है।

प्रश्न—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी को आप कैसे सिद्ध कर सकते हैं, कि यह परमाणुओं के मिश्रण से बने हुए हैं। आकाश को तो आप भी नित्य ही मानते हैं, फिर यह बना हुआ कैसे हो सकता है ?

उत्तर—वास्तव में आकाश नित्य ही है। किन्तु प्रलय हो जाने पर यह समस्त आकाश अर्थात् खाली जगह Vacuum परमाणुओं से भरकर अन्धेरा छा जाता है। उस वक्त न होने के बराबर ही कहा जाता है। सृष्टि उत्पत्ति के समय जब परमात्मा उन परमाणुओं में हलचल पैदा करके उन्हें इकट्ठा करता है तो सांसारिक पदार्थ उत्पन्न होजाते हैं। आकाश अर्थात् खाली जगह ज्ञात होने लगती है। इस प्रकार आकाश की उत्पत्ति कही जाती है।

आकाश का गुण शब्द है। शब्द बिना वायु के सुनाई नहीं दे सकता। इस कारण आकाश से वायु की उत्पत्ति कही जाती है। वायु बिना आकाश के हो नहीं सकती। वायु पर अग्नि का होना निर्भर है, इसलिए वायु को अग्नि का कारण कहा है। अग्नि जल का कारण है। अग्नि ही जल को खींचकर बारिश के रूप में भेजती है। जहां सर्दी के कारण पानी जम जाता है वह गर्मी पाकर फिर पानी बन जाता है। पृथ्वी का आधार जल पर है। जल के बरसने से ही पृथ्वी पर भांति २ की औषधी और अन्न, अन्न से वीर्य की उत्पत्ति होती है। वीर्य से समस्त जीवधारी उत्पन्न होते हैं।

तनिक वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के उत्पन्न करने में उत्पत्ति कर्ता की बुद्धि और अनन्त ज्ञान पर ध्यान दीजिए, कि उसने वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी को उत्पन्न करने में कितने कितने परमाणुओं का संयोग किया है। वायु में १२०, अग्नि में ३६०, जल में ४८० और मिट्टी में ६०० परमाणु रक्खे हैं। इस प्रकार यह सब पदार्थ मिश्रित हैं। मिश्रित होने से उनका उत्पन्न करने वाला परमात्मा है।

प्रश्न--यदि ईश्वर को जीवधारियों के शरीरों का कर्ता मान लें, तो फिर माता-पिता के भोग करने से उत्पत्ति का होना असम्भव हो जाता है।

उत्तर--सृष्टि का कार्य दो प्रकार से चलता है। एक ईश्वरीय सृष्टि और दूसरे जैवी सृष्टि। ईश्वरीय सृष्टि का कर्ता ईश्वर है। जैविक सृष्टि का कर्ता जीव होता है। जो जीव के कर्तव्य हैं वह जीव करता है ईश्वर नहीं करता। जैसे हल चला कर अन्न पैदा करना और आटा पीस कर रोटी आदि बनाना। ईश्वर के नियम अटल हैं। ईश्वर अपने नियमों के अनुसार अपना कार्य करता है। जीवात्मा उन नियमों के अनुसार अपना कार्य करता है। ईश्वर ने ब्रह्माण्ड रचा। उसमें भांति २ के असंख्य पदार्थ उत्पन्न किए। यह कार्य जीवात्मा की सामर्थ्य से बाहर है। जगत में जो पदार्थ परमात्मा ने बनाये हैं मनुष्य उन पदार्थों का विधि पूर्वक भोग करें और अपना कार्य चलायें।

आदि सृष्टि में परमात्मा ने जीवों के शरीरों और सांचों को बना दिया था। फल-फूल अन्न जड़ी-बूटी अर्थात् असंख्य पदार्थों के बीज उत्पन्न करके सृष्टि का कार्य चलता कर दिया था। परमात्मा ने ब्रह्माण्ड के समस्त कार्यों को बांध रक्खा है। उनमें बाल बराबर भी अन्तर नहीं हो सकता। प्रलय तक उसी प्रकार सृष्टि का कार्य चलता रहता है।

यदि ईश्वर सृष्टि न रचे तो फिर कौन रचे ? जीव तो अल्पज्ञ है, वह तो रच नहीं सकता। प्रकृति जड़ पदार्थ है वह भी ज्ञान पूर्वक रच कर नियमानुसार नहीं चला सकती। जीवात्मा यन्त्रों के बिना कुछ नहीं कर सकता। वह सृष्टि में यन्त्र लेकर

कार्य तो कर सकता है मगर कीट-पतंग आदि हजारों ऐसे सूक्ष्म पदार्थ हैं कि जो आंख या खुर्दबीन से भी नहीं देखे जा सकते। फिर जीवात्मा रचना कैसे कर सकता है ? जीवात्मा के पास जब तक शरीर, इन्द्रियां, मन और बुद्धि आदि न हों वह कुछ भी नहीं कर सकता। इसलिए कहना पड़ता है कि जीवधारियों का शरीर परमात्मा ही बनाता है और इन्द्रियां, मन तथा बुद्धि देकर जानने और कार्य करने योग्य करता है।

प्रश्न--जब ईश्वर को जगत का कर्ता मानते हो तो ईश्वर का कर्ता भी कोई न कोई मानना ही पड़ेगा।

उत्तर--क्यों मानना पड़ेगा ? ऐसा मानना आवश्यक नहीं है। याद रखिये कर्ता का कर्ता और कारण का कारण कभी नहीं होता। क्योंकि प्रथम कर्ता और कारण के होने से ही कार्य होता है जिसमें संयोग और वियोग नहीं होता जो स्वयं संयोग और वियोग का प्रथम कारण है उसका कर्ता और कारण नहीं होता। प्रश्न करने से पूर्व कुछ सोच तो लिया करो।

प्रश्न—आपका परमात्मा सृष्टि रचने के चक्कर में क्यों पड़ता है। इसमें उसका क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—सृष्टि रचने में तो ईश्वर का अपना कोई प्रयोजन नहीं है और न ही उसे किसी चक्कर में पड़ना पड़ता है। चक्कर में एक अल्पज्ञ तो पड़ सकता है किन्तु सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान् नहीं पड़ सकता, न ही उसे कोई दुःख या कष्ट होता है। ईश्वर मुक्त स्वभाव है इसलिए वह किसी बन्धन में भी नहीं हो सकता। वह सर्व शक्तिमान् है, उसके लिए कोई पदार्थ अप्राप्त नहीं, तो फिर दुःख कष्ट या चक्कर किस बात का ?

ईश्वर का स्वभाव दयालु है, इसीलिए वह सृष्टि जीवों के भोग और उपकार के लिए रचता है और जीवों को ऊंचे उठने और मुक्ति अर्थात् परम आनन्द प्राप्त करने का बार बार अवसर देता है। इसके अतिरिक्त जीव अपने अच्छे या बुरे कर्मों का फल भी सृष्टि में ही भोगते हैं। जीवात्मा स्वतन्त्र है। यह उसका कार्य है कि वह ईश्वर के विधान के अनुसार चलकर लाभ उठाए या विधान को तोड़कर संसार में लिप्त होजाए और फिर जीवन-मरण के चक्कर में पड़ता रहे।

प्रश्न--क्यों जी ! सिमेटिक (Semitic) मत वाले तो यह मानते हैं कि ईश्वर ने यह सृष्टि इसलिए रची है कि जीव ईश्वर की प्रशंसा और चापलूसी करते हुए ईश्वर को प्रसन्न रक्खें और फिर स्वर्ग (जन्नत) प्राप्त करें।

उत्तर—यह तो हम पहले भी कह चुके कि ईश्वर अपनी प्रशंसा या चापलूसी आदि कराने का भूखा नहीं है। प्रशंसा या चापलूसी कराने से एक देशी तो प्रसन्न हो सकता है सर्व देशी को इसकी आवश्यकता नहीं होती। ईश्वर स्वयं महान है, उससे बड़ा और कोई है नहीं, तो फिर प्रशंसा कैसी ? ईश्वर तो एक रस है वह किसी की प्रशंसा करने से प्रसन्न नहीं होता। इसलिए यह सृष्टि अपनी प्रशंसा या चापलूसी कराने के लिए नहीं बनाई। वरन् इसलिए बनाई है कि जैसा हमने पिछले उत्तर में बतला दिया है।

प्रश्न--आपके मान्य शास्त्रों अर्थात् उपनिषदों और दर्शनों में सृष्टि उत्पत्ति के विषय में बहुत भिन्नता है। किसी शास्त्र में यह लिखा है, कि परमात्मा से अग्नि, जल और पृथ्वी

पैदा हुए। किसी में ऐसा वर्णन किया गया है कि परमात्मा से आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी क्रम से पैदा हुए। किसी में यह बतलाया गया है, कि परमात्मा ने सब पदार्थ एक बार क्रम से बनाये हैं। न्याय में परमाणुओं से, वेदान्त में ब्रह्म से और वैशैषिक में काल (ज़माना) से सृष्टि उत्पत्ति होती है। इस भिन्नता के होते हुए हम आपके सृष्टि उत्पत्ति के सिद्धान्त को कैसे स्वीकार कर सकते हैं ?

उत्तर——उन शास्त्रों में जो सृष्टि उत्पत्ति के विषय में आपको भिन्नता ज्ञात होती है, वास्तव में वह भिन्नता नहीं है। हां आपके समझने में भिन्नता अवश्य है। संसार में किसी वस्तु की उत्पत्ति में यह वस्तुयें होनी आवश्यक हैं:—

(१) उपादान कारण (२) निमित्त कारण (३) काल और (४) कर्म। यह तो हम बार २ कह ही आये हैं, कि अभाव से भाव नहीं हो सकता। सृष्टि उत्पत्ति के लिए प्रकृति उपादान कारण है। इसका पूरा वर्णन न्याय शास्त्र में है। परमाणु स्वय संयोग वियोग नहीं कर सकते। उनको मिलाने या अलग करने वाली शक्ति होनी चाहिए। वह निमित्त कारण परमेश्वर है। उसका वर्णन वेदान्त में है। उत्पत्ति के लिए काल भी एक बहुत बड़ा कारण है। उसका पूरा वर्णन वैशैषिक शास्त्र में है। कर्म के बिना भी कोई वस्तु नहीं बन सकती। इसका पूरा हाल मीमांसा में पाया जाता है। प्रत्येक दर्शन में एक २ प्रधान विषय का पूरा वर्णन है।

साथ ही आप यह भी समझ लें कि प्रलय दो प्रकार की होती है। एक महा प्रलय और दूसरी आदान्त्र प्रलय। महा प्रलय में संसार के समस्त पदार्थ नष्ट होजाते हैं। जब सृष्टि की उत्पत्ति

होती है, तो आकाश से प्रारम्भ होकर सब तत्व क्रम से पैदा होते हैं। आदान्त्र प्रलय में कभी २ सब तत्व (अनासिर) स्थिर रहते हैं। शेष सब पदार्थ नष्ट हो जाते हैं। कभी कुछ तत्व नष्ट हो जाते हैं। और कभी कुछ शेष रहते हैं। कहने का प्रयोजन यह है कि आदान्त्र प्रलय में जिस तत्व से प्रलय होती है सृष्टि उत्पत्ति फिर उसी तत्व से होती है।

प्रश्न--ब्रह्माण्ड के तत्व और असंख्य प्रकार के पदार्थ आदि बनाने का ज्ञान ब्रह्म ने किससे सीखा ?

उत्तर--ब्रह्म नित्य और अमर है। इसलिए उसका ज्ञान भी नित्य और अमर है। ब्रह्म सदा से इसी प्रकार सृष्टि रचता चला आया है और इसी प्रकार सदा सदा तक सृष्टि रचता रहेगा। ब्रह्म का ज्ञान अनादि और स्वाभाविक (Instinct Innate Knowledge) है। नैमितिक ज्ञान (Acquired Knowledge) नहीं है। नैमितिक ज्ञान वह होता है कि वस्तु पहले बने और उसका ज्ञान उसे देखकर पीछे से हो।

प्रश्न—हम तो देखते हैं कि वस्तुयें नित्य नई २ स्वयं उत्पन्न होती हैं, फिर यह कैसे माना जा सकता है कि यही वस्तुयें सदा से चली आई हैं ?

उत्तर--देखते तो आप कुछ भी नहीं वैसे ही भ्रम में पड़े हुए हो। किसी एक वस्तु का नाम तो लो कि जो पहले नहीं थी और अब उत्पन्न हुई हो। जगत में कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती। सब वस्तुयें प्रवाह (तसलसुल) से अनादि हैं। उन समस्त वस्तुओं का ब्रह्म को प्रवाह से ज्ञान चला आरहा है। प्रत्येक कार्य

के अन्दर यह तीन बातें होती हैं—जाति (नौईयत), आकृति (शक्ल) और व्यक्ति। इनमें से जाति तो नित्य है, आकृति ब्रह्म के ज्ञान में रहती है और व्यक्ति उपादान कारण अर्थात् प्रकृति में रहती है। इन तीनों वस्तुओं को मिलाने वाला ईश्वर है।

प्रकृति के अन्दर पांच प्रकार के कर्म उपस्थित होते हैं—नीचे गिरना, उछलना, सुकड़ना, फैलना और चलना। यह पांचों कार्य परमात्मा की शक्ति से प्रकृति में होते हैं। अग्नि के अन्दर उछलना, जल के अन्दर नीचे गिरना, पृथ्वी के अन्दर सुकड़ना, आकाश के अन्दर फैलने का आधार होना और वायु के अन्दर चलना। जीवात्मा के अन्दर इच्छापूर्वक कर्म करना या न करना या विरुद्ध करना। इन सब कर्मों का परमेश्वर अनादि काल से ज्ञानी-विज्ञानी चला आरहा है। इसलिए ईश्वर के ज्ञान और कर्म में कोई अन्तर नहीं आ सकता।

प्रश्न——जब आप ब्रह्म को सर्व व्यापक और क्रिया रहित मानते हो, तो जगत रचने में जो क्रिया करनी पड़ती है, वह क्रिया कैसे कर सकता है? इसलिए ब्रह्म जगत का कर्ता नहीं हो सकता। जब ब्रह्म में स्वयं ही क्रिया नहीं है तो वह दूसरों को क्रिया कैसे दे सकता है? इसके अतिरिक्त ब्रह्म को सृष्टि रचने, प्रबन्ध और प्रलय करने में बहुत कष्ट होता होगा।

उत्तर——ब्रह्म सर्व व्यापक और क्रिया रहित अवश्य है। किन्तु ब्रह्म का स्वाभाविक गुण क्रिया अर्थात् गति देना है। वह प्रकृति में गति देकर ही सृष्टि रचता है। चेतन शक्ति कर्म करने या गति देने से अलग नहीं रह सकती। यदि अलग मानी जाये तो ईंट पत्थर की भांति जड़ पदार्थ माननी पड़ेगी, फिर ऐसी शक्ति का मानना या न मानना निराधार है। इस उदाहरण से

सरलता से समझ में आ जायेगा—चुम्बक पत्थर स्वयं गति या क्रिया नहीं करता, किन्तु लोहे को गति देकर क्रिया कराने लगता है और अपनी ओर खींच लेता है। जैसे कुम्हार का आत्मा मन से संयुक्त होता है। मन हाथ से संयुक्त होता है। हाथ डंडे से संयुक्त होता है। डंडा चाक से संयुक्त होकर उसमें गति या क्रिया उत्पन्न कर देता है। ऐसे ही परमात्मा भी सब पदार्थों में व्यापक होने से केवल सम्बन्ध मात्र से ही प्रकृति तथा प्रत्येक पदार्थ में गति या क्रिया उत्पन्न कर देता है। यह गति या क्रिया सर्व व्यापक ही कर सकता है एक देशी नहीं कर सकता। अल्पज्ञ जीवात्मा शरीर में रहकर भी तो इच्छा मात्र से सब कार्य करता है, फिर सर्वज्ञ परमात्मा इच्छा मात्र से ब्रह्माण्ड के कार्य क्यों नहीं कर सकता? अवश्य कर सकता है। ईश्वर में ज्ञान, बल तथा क्रिया स्वाभाविक हैं। जैसे जीवधारी को स्वांस पर स्वांस लेना स्वाभाविक है और स्वांस लेने में उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। ऐसे ही ईश्वर को सृष्टि रचकर उसके कार्य चलाने और प्रलय करने में किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं होता।

प्रश्न—जीवात्मा को तो कार्य करने के लिए शरीर, इन्द्रियों और मन की आवश्यकता पड़ती है, तो फिर ब्रह्म को भी यही आवश्यकता पड़नी चाहिए, क्योंकि ईश्वर और जीवात्मा इन दोनों को आप सूक्ष्म मानते हैं।

उत्तर—ईश्वर और जीवात्मा दोनों सूक्ष्म तो अवश्य हैं, किन्तु ईश्वर जीवात्मा की अपेक्षा अति सूक्ष्म है (Rarest state) है। ईश्वर प्राकृतिक (Material) पदार्थ की भांति जगह घेरने वाला नहीं है। उसमें न कोई वजन है न लम्बाई न चौड़ाई और न ही ऊंचाई है। इसीलिए ईश्वर सर्व व्यापक और

अन्तर्यामी है। उसकी सामर्थ्य, शक्ति और बल कण २ में विराजमान है। सृष्टि की बनावट, विचित्र रंग-रूप, बारीकी, सूक्ष्मता और स्थूलता आदि को देखकर यह भली प्रकार निश्चय होजाता है, कि ब्रह्माण्ड आदि के रचने वाली कोई ज्ञानवान्, सर्व शक्तिमान, सर्व अन्तर्यामी, सर्व व्यापक और निराकार शक्ति ही हो सकती है। कभी आपने यह देखने का कष्ट किया है, कि चिऊटी से भी कई गुने छोटे जीव-जन्तु होते हैं। उनके शरीर में भी सैंकड़ों बारीक २ ऐसे अंग होते हैं, जिनको हम खुर्दबीन से भी नहीं देख सकते। इतने बारीक अंग न हाथ से और न ही किसी यन्त्र से बनाये जा सकते हैं। तो फिर साकार ईश्वर उनकी रचना कैसे कर सकता है ? ईश्वर प्रकृति से अति सूक्ष्म है। वह निराकार और सर्व व्यापक है। तभी तो वह अणु, त्रसरेणु और परमाणु आदि को अपनी सामर्थ्य से अपने वश में लाकर सभी सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों की रचना कर सकता है। ब्रह्माण्ड के स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों की बनावट रंग-रूप और गुण आदि तथा गर्भ में बच्चे की उत्पत्ति आदि को देखकर निःसन्देह यह निश्चय होजाता है कि इसके रचने और प्रलय करने वाला निराकार ईश्वर ही हो सकता है साकार हो ही नहीं सकता।

प्रश्न—यदि हम ईश्वर को सृष्टि रचयिता मान भी लें तो फिर भी उसे सर्व व्यापक मानना जरूरी नहीं है। जैसे कोई कारीगर कोई वस्तु बनाता है, तो वह बनाकर उससे अलग हो जाता है। ऐसे ही ईश्वर को भी कारीगर की भांति सृष्टि रचकर अलग ही रहना चाहिए।

उत्तर—कारीगर तो कुछ आवश्यक चीजें लेकर उन्हें

आपस में एक नियम से मिला या जोड़ देता है। वह कारीगर उस वस्तु के एक अंश का बनाने वाला होता है। उस अंश तक ही उसका और उस वस्तु का सम्बन्ध होता है। जिन पदार्थों से वह वस्तु बनाता है, उन वस्तुओं के परमाणुओं को विशेष नियम में रखना कारीगर के वश की बात नहीं होती। तभी तो कारीगर की बनाई वस्तुयें बिगड़ती और टूटती-फूटती रहती हैं। अटल नहीं हो सकतीं। इसी कारण कारीगर को उसके पास रहने की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु ईश्वर के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। इस विशाल ब्रह्माण्ड और लोक-लोकान्तर आदि में क्रियायें हर क्षण होती रहती हैं। कहीं संयोग रूपी, कहीं वियोग रूपी और कहीं दोनों प्रकार की। इसलिए उन परमाणुओं और परमाणुओं से बनी हुई वस्तुओं को अपने नियमानुसार चलाने या छिन्न-भिन्न करने के लिए ईश्वर का सर्व व्यापक होना ही अति आवश्यक है। ईश्वर की क्रियायें, समुद्र की गहराई, पहाड़ों की ऊंचाई और भयानक गुफाओं आदि में अर्थात् सबमें सब जगह ऊपर नीचे और चारों ओर होती रहती हैं। इसलिए ईश्वर का सर्व व्यापक और अन्तर्यामी होना ही सिद्ध होता है। आप सर्व व्यापक ईश्वर को हटाकर कहां भेजना चाहते हैं? प्रश्न करने से पहले कुछ तो सोच लिया करो।

विकासवाद

प्रश्न--विकास वाद की थ्योरी (Theory of Evolution) को तो सभी दार्शनिक और वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। किसी विद्वान् को आज तक उसके खण्डन करने का साहस नहीं हो सका।

उत्तर--आप जरा उन विकास वादियों के नाम और उनकी संक्षिप्त विचार-धारा भी हमारे सामने रखने का कष्ट

कीजिए, ताकि हम मनन करके आपको उत्तर दे सकें।

प्रश्न--लीजिए, उनके नाम और संक्षिप्त विचार-धारा इस प्रकार है—मि० लामार्क (Mr. Lamark) कहता है कि शरीर बाहरी और भीतरी शक्तियों से बनता है। शरीर की विशेषता उसकी सन्तान में आती है, जैसे ऊँट के पूर्वजों की लम्बी गर्दन नहीं होती थी, उन्होंने ऊचे वृक्षों के पत्ते खाने की कोशिश की तो उनकी गर्दनें लम्बी होती चली गईं। शरीर के सभी अंगों और इन्द्रियों का परिवर्तन तथा उन्नति इसी प्रकार होती जारही है। मि० डार्विन (Mr. Darwin) योनियां अस्थिर हैं वह क्रमनुसार एक दूसरे से मिलती और उन्नति करती हुई पाई जाती हैं। उन्नति इस प्रकार होती है, कि जिस अंग की आवश्यकता किसी प्राणी को अनुभव होती है, वह अंग उत्पन्न होजाता है और जिस अंग की आवश्यकता नहीं रहती वह नष्ट होकर उन्नत योनि बन जाती है। सबसे पहले वह जीव-जन्तु उत्पन्न हुए जो पानी में रहते थे उन्हीं······से उन्नति होते २ बोलने वाले मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। मि० एच० स्पेन्सर (Mr. H. Spencer)—भिन्न २ प्रकार के सादा तत्व और उनकी गति मिलकर मिश्रित वस्तुयें बन जाती हैं और आगे चलकर व्यक्तिगत रूप से भिन्न २ होजाती हैं। इसी प्रकार मिलजुल कर यह समस्त ब्रह्माण्ड बन जाता है और सृष्टि का विकास होता रहता है। मि० मॉरगन (Mr. Morgan)—इसकी थ्योरी आकस्मित विकास (Emergent Evolution) के नाम से प्रसिद्ध है। विकास दो शक्तियों द्वारा होता है। एक शक्ति पुरानी और सादा वस्तु को नई और उन्नत रूप में बदलती रहती है। दूसरी शक्ति नई उत्पन्न करती रहती है। प्रकृति में अणु (Atoms) होते हैं। उन अणुओं से उन्नति होते २ जीवन-विकास होजाता है।

उत्तर--विकासवाद की इस प्रकार की थ्योरी का खण्डन जो विदेशी विद्वानों ने किया है प्रथम आप उसको सुन कर समझ लें।

(१) सर ओलिवर लॉज (Sir Oliver Lodge) लिखता है कि जीवन, प्रकृति और उसकी गति की शक्ति से सर्वथा बाहर है। वैज्ञानिक जीवन के बारे में कुछ भी तो नहीं जानते और न ही जान सकेंगे। साइन्स का कार्य तो केवल इतना है कि जो कुछ हुआ है उसे बतला दे। निषेध करना साइन्स की सीमा से बाहर है। विज्ञान हमें कैसे (How) का उत्तर देता है क्यों (Why) का नहीं। डार्विन ने यह तो लिख दिया कि जीवात्मा अपनी सत्ता स्थिर रखने के लिए परिश्रम करता है (survival of the fittest), किन्तु यह न बता सका कि विकास और उन्नति करने का विचार उसमें कहां से आया था। इस विद्वान् ने यह भी लिखा है कि विकासवाद की थ्योरी में और भी बहुत सी ऐसी त्रुटियां हैं, जिनका आज तक कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सका और मैं समझता हूं भविष्य में भी नहीं दे सकेगा। शरीर में जो चेतनता है वह शरीर से भिन्न और शरीर को चलाने वाली उच्च वस्तु है, जो शरीर के नाश होजाने पर शेष रहती है। वह सत्ता नित्य और अमर है। प्राचीन समय से जो जीवात्मा के अमर होने का सिद्धान्त चला आरहा है मैं उससे सर्वथा सहमत हूं। मरने के पश्चात् भी जीवात्मा के साथ स्मृति, स्वभाव, शिक्षा, चरित्र और प्रेम आदि गुण रहते हैं।

(२) डा० वालेस (Dr. Wallace)—यह दार्शनिक कहता है कि क्रम पूर्वक ज्ञान और योनियों की वृद्धि नहीं होती, क्योंकि देखने और पढ़ने में आता है कि वेदों की ऋचाओं को

सरल और उचित भाषा में वर्णन करने वाले प्राचीन महापुरुष किसी दशा में भी वर्तमान काल के अच्छे से अच्छे और बड़े से बड़े विद्वानों से कम नहीं थे। प्राचीन कला-कौशल शिल्प आदि विद्यायें भी बहुत ऊंची थीं। कुछ वैज्ञानिकों की यह बात सर्वथा असत्य है कि प्रकृति से चेतनता पैदा हो सकती है। चेतना स्वतन्त्र है। वह प्रकृति से अलग पदार्थ है। जीवन उत्पन्न करने की बात असम्भवः है। वैज्ञानिक आजतक यह तो समझ ही न सके कि वृक्षों में पानी किस प्रकार ऊपर चढ़ता है।

(३) मि० बालफोर (Mr. Balfour), डा० फलिमिंग (Dr. Fleming), डा० एडवर्ड हुल (Dr. Edward Hull) और प्रो० इरमैन (Erman)—इन विद्वानों ने सरलाज और डा० वालेस का पूर्ण रूप से समर्थन किया है। मि० लिंक (Mr. Link) एक उच्चकोटि का प्रसिद्ध विद्वान था। इसने भारतीय, युनानी और योरुपियन आदि अर्थात् सभी दर्शन की पुस्तकों को पढ़कर मनन किया था और अपना मत इस प्रकार प्रकट किया था। कि सृष्टि की उत्पत्ति जैसी कि विकासवादी मानते हैं, अकस्मात् (Accidental) उत्पन्न होकर नियमानुसार नहीं चल सकती। क्रम पूर्वक ज्ञान वृद्धि नहीं होती। जो बात वैज्ञानिक अब बतला रहे हैं, उससे भी कहीं अधिक बातें प्राचीन काल में मनु स्मृति में लिख दी गई थीं और यह बतला दिया गया था कि आकाश (Ether) से वायु, वायु में परिवर्तन होकर अग्नि, वायु और अग्नि के परिवर्तन से जल उत्पन्न होता है। एक योनि से लाखों प्रकार की योनियां जो आज दिखाई पड़ती है कदाचिद् उत्पन्न नहीं हो सकती। सृष्टि उत्पत्ति के समय भिन्न २ रूप के जीव-जन्तु, पशु-पक्षी और मनुष्य उत्पन्न हुए थे। वह सब योनियां उसी दशा में अब भी मौजूद हैं। जो २ प्राणी उत्पन्न हुए और होते हैं वह अपने २ पूवजों के गुण अपनाते चले जाते हैं।

यदि विकासवादियों की विकासवाद और उन्नति की थ्योरी सत्य मान ली जाय, तो फिर प्राचीन समय में यह ज्ञान कहां से आ गया था, जो वेदों और मनु स्मृति आदि प्राचीन पुस्तकों में पाया जाता है ? मैं तो यह कहता हूँ कि ईश्वर जीव और प्रकृति का ज्ञान जो उन प्राचीन विद्वानों को था वह ज्ञान अभी तक हमें प्राप्त नहीं हो सका।

(४) मि० एच० बर्गसन (Mr. H. Bergson)—इस फिलासफर ने स्पेन्सर आदि विकाश वादियों की थ्योरी की हंसी उड़ाते हुए लिखा है, कि विकासवादी विकास की गहराई तक न पहुंचकर केवल धरातल पर ही घूमते रहे। विकासवाद की थ्योरी दार्शनिक रूप से सिद्ध नहीं होती। विकास वादियों ने पहले तो वास्तविक तत्व को मानकर टुकड़ों में विभाजित किया, फिर पीस कर इक्ट्ठा किया और प्रणियों को घड़कर खड़ा किया। स्पेन्सर आदि विकासवादियों ने विकास के भिन्न २ अंगों के नमूने तो बना दिए, किन्तु वह यह न बता सके कि ऐसा क्यों हुआ। विकासवादियों की थ्योरी खण्डन करते हुए इस विद्वान ने लिखा है, कि उन्होंने जो प्रारम्भिक जीव-जन्तुओं को बढ़ाते २ मनुष्य योनी तक पहुंचा दिए, किन्तु वह यह न बता सके कि वह छोटे जीव जन्तु बहुत पहले अपने वातावरण (Environment) के अनुकूल हो चुके थे, तो फिर उनको भिन्न २ अपने से ऊंची योनियों तथा मनुष्य योनि तक आने की क्यों और क्या आवश्यकता थी ? विकासवादी वास्तविक विकास को नहीं समझ पाये। ब्रह्माण्ड का विकास प्रारम्भ में परमात्मा करता है। सब योनियां स्थिर हैं। अस्थिर नहीं हैं।

(५) मि० व्हाइट हैड (Mr. white Head)—लिखता है कि विकासवादी बल पूर्वक यह जो कहते हैं, कि प्रकृति आकस्मिक रीति से भिन्न २ योनियां और रूप धारण कर लेती है,

उनकी यह बात दर्शन की दृष्टि से सर्वथा असत्य है। वास्तव में प्रकृति का स्वयं विकास होना असम्भव है। विकासवादियों का यह सिद्धान्त कि प्रकृति कूद कर चेतन बन जाती है और आगे चलकर बुद्धि का रूप धारण करके ज्ञानवान हो जाती है, एक चमत्कार बन जायगी और फिर विद्वानों को प्रकृति की परिभाषा (Definition) को बदल कर चेतनता का रुप देना होगा।

अन्त में डार्विन ने अपनी विकासवाद की थ्योरी को अधूरी और त्रुटियों से भरी हुई मानकर यह स्वीकार किया था, कि इसका कोई कारण नहीं बताया जा सकता कि योनियों का परिवर्तन आप से आप क्यों होता है। हैकिल ने विकासवाद की थ्योरी को त्रुटिपूर्ण मानते हुए लिखा है, कि प्राणी मात्र की उत्पति का विषय बहुत कठिन और गम्भीर है। इसका समझ में आना आसान नहीं है।

विकासवादी निम्नलिखित बातों का कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे पाते—

(१) विकासवाद की थ्योरी प्राकृतिक नियमों से कैसे सिद्ध होती है ?

(२) जो वस्तु उत्पन्न होती है उसका नाश होना भी जरूरी है, किन्तु विकासवाद की थ्योरी में योनि से योनि निकालने के सिद्धान्त में नाश होना शून्य माना गया है। यह दार्शनिक त्रुटि है, इसका हल कैसे होगा ?

(३) यदि विकासवाद के सिद्धान्त को मान भी लें कि योनि से योनि विकसित होती चली आई हैं, तो उन विकसित और उन्नत योनियों की पहली योनि की अवस्था बाकी नहीं

रहनी चाहिये। किन्तु संसार में सभी जीव-जन्तु, कीड़े-मकोड़े, पशु-पत्ती, बन्दर, बनमानस और मनुष्य आदि की योनियां जैसी सदा से चली आ रही हैं, अब भी मौजूद हैं, तो फिर विकास किस प्रकार और कहां होता है ?

(४) विकासवादी कहते हैं कि शारीरिक विकास के साथ इसी क्रम से ज्ञान का भी विकास होता है, किन्तु संसार में यह बात दिखाई नहीं देती। भोग योनि वाले प्राणियों में जो ज्ञान और भोग पहले से चला आ रहा है, वह अब भी है। कोई विकासवादी बतलाए कि उन्होंने क्या उन्नति की ? विकासवादी स्वयं अपने विषय में सोचें कि उन्होंने विकासवाद की थ्योरी त्रुटिपूर्ण घड़कर प्रस्तुत करने में उन्नति की या अवनति ?

प्रश्न—आपके वेदादि शास्त्र तो विकासवाद की थ्योरी का पाठ पढ़ाते हैं और आप स्वयं उसका खण्डन करते हैं, यह बात समझ में नहीं आती, ऐसा क्यों ?

उत्तर—विकासवाद की थ्योरी जो डार्विन आदि विकासवादियों ने जीवन सम्बन्धी (Biological Evolution) कल्पित खड़ी की है, हमने उसका खण्डन किया है। हम योनि से योनि निकलने और इस प्रकार उन्नति करने के सिद्धान्त की काट करते हैं। किन्तु वेद आदि शास्त्रों में जिस प्रकार विकास होना बतलाया गया है, वह अवश्य होता है। हम उसको मानते हैं। विज्ञान, गर्भविद्या (Geology) जड़ी-बूटी आदि की विद्या (Botany) और जीव-जन्तु विद्या (Zoology) इत्यादि का विकास से गहरा सम्बन्ध है। वेद आदि शास्त्र विकास होने की इस प्रकार शिक्षा देते हैं—कि ईश्वर जब प्रकृति में हलचल उत्पन्न करता है, तो सबसे पहले आकाश (Ether)

ज्ञात होता है। आकाश से वायु अर्थात् माया (Gaseous condition) बनती है। वायु से अग्नि उत्पन्न होती है। अग्नि से आपाः जल (Liquid Condition) बनता है। जल से पृथ्वी (Solid Condition) बनती है। पृथ्वी से औषधी आदि और ओषधी आदि से पेड़, फल, फूल, साग-सबजी आदि उत्पन्न होजाने के पश्चात् पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि जीवधारी उत्पन्न होते हैं और इन सबके पश्चात् मनुष्य उत्पन्न किये जाते हैं।

प्रश्न—आप कहते हैं कि सृष्टि की आदि में ईश्वर ने अपना ज्ञान (वेद) दिया था किन्तु मुसलमान तो यह मानते हैं कि कुरान से पहले जो भी ईश्वरीय पुस्तकें थीं वह सब ईश्वर ने रद्द करके कुरान में अपना पूर्ण ज्ञान दिया है। कुरान ही मान्य है और प्रलय तक मान्य रहेगी। यह भेद क्या है इसका स्पष्टीकरण कीजिए ?

उत्तर—ईश्वर स्वयं अनादि और अनन्त है, उसका ज्ञान भी अनादि और अनन्त है। ईश्वर का विधान और नियम अटल हैं। उनमें कोई कमी-बेशी या काट-छांट करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि की आदि में आना चाहिए। इसीलिए ईश्वर ने मनुष्यों के लिए अपना ज्ञान सृष्टि की आदि में दिया था जो अब तक प्रचलित है और प्रलय तक प्रचलित रहेगा। ईश्वर सर्वज्ञानी है। जो पदार्थ उसने सृष्टि की आदि में उत्पन्न करके उनके अन्दर जो २ गुण, कर्म और स्वभाव उत्पन्न कर दिये थे, वह प्रलय तक उसी प्रकार रहेंगे। उनमें बाल बराबर भी अन्तर नहीं हो सकता। इसी प्रकार ईश्वर ने जो ज्ञान सृष्टि की आदि में दे दिया था उसमें भी कोई पुरुष अपनी बुद्धि या चतुराई से कमी-बेशी नहीं कर सकता। जो लोग वेद के अतिरिक्त

किसी अन्य पुस्तक को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, वह केवल अपनी प्रधानता दिखलाने के लिए ऐसा कहते हैं। अतः उसमें कोई तत्व नहीं है।

प्रश्न--विद्वानों का ऐसा मत है कि बिना किसी उच्च शक्ति की सहायता के ही क्रमशः मनुष्य अपनी उन्नति कर लेता है और पूर्ण सभ्य बन जाता है।

उत्तर--आपने देखा होगा कि बालक किसी प्रकार की स्वयं उन्नति नहीं कर सकता, जब तक कि कोई विद्वान उसको शिक्षा न दे। जैसे दियासलाई में जलने की शक्ति तो होती है, किन्तु जब तक उसको अग्नि या रगड़ के द्वारा गर्मी न पहुँचाई जाये तो वह जल नहीं सकती, ऐसे ही बुद्धि में ज्ञान धारण शक्ति तो होती है, किन्तु जब तक उसका सम्बन्ध किसी ज्ञानी के साथ न हो, बुद्धि स्वयं उन्नति नहीं कर सकती, या उसमें ज्ञान नहीं आ सकता। सीरिया के राजा असुर बाणीपाल (Asur Bani Pal) और अकबर बादशाह ने बालकों को बारह २ वर्ष तक अलग २ जंगलों में रक्खा था तो वह बालक बारह वर्ष के बाद भी मनुष्य की बोली नहीं बोल सकते थे। अब भी बहुत सी ऐसी जंगली जातियां मौजूद हैं, कि जिन्होंने अभी तक किसी प्रकार की कोई उन्नति नहीं की। इसलिए कहना पड़ता है कि सृष्टि की आदि में परमात्मा अपना ज्ञान कुछ योग्य मनुष्यों के हृदयों में प्रकाशित करता है और फिर वह मनुष्य उस ज्ञान को संसार में फैलाते हैं।

प्रश्न—यह जगत कब बना, और कब तक क़ायम रहेगा ?

उत्तर--इस जगत को बने हुये १६६० ई० में १६७२६४६०६० वर्ष हो चुके हैं और प्रलय (क़यामत) होने में

२३४७०५०६४० वर्ष शेष हैं। सृष्टि की अवधि चार अरब बतीस करोड़ वर्ष होती है। इस को ब्रह्म दिन कहते हैं। इतनी ही अवधि प्रलय की होती है, जिसे ब्रह्म रात्रि कहते हैं।

प्रश्न--यह गणना मन घडन्त और बनावटी प्रतीत होती है ?

उत्तर--यह गणना बनावटी नहीं है। वास्तव में आपको ओपरी अवश्य ज्ञात होती होगी, क्योंकि आप इस गणना को भली प्रकार नहीं जानते। इसी गणना पर ज्योतिष विद्या की नींव रक्खी है। किसी ज्योतषी से पूछकर निश्चय कर लीजिये।

प्रश्न--इस गणना का निश्चय कराने के लिए आपके पास क्या प्रमाण हैं ?

उत्तर--वेद और सूर्य सिद्धान्त आदि मान्य ग्रन्थ इस की पुष्टि करते हैं। यह गणना इस प्रकार प्राप्त होती है कि दस लाख तक शून्य देने के बाद क्रम से दो, तीन और चार बढ़ाने पर चार अरब बत्तीस करोड़ की संख्या सिद्ध होती है। देखो (अथर्ववेद प्रपाठक ८० अनु० १ मन्त्र २१)। इस गणना पर ऋषि-मुनियों ने मनन करके इसका हल इस प्रकार किया था कि ७१ चतुर्युगियों का एक मनुतन्त्र और ऐसे १४ मनुतन्त्रों का एक ब्रह्म दिन या कल्प होता है। एक कल्प का एक हजारवाँ भाग महायुग कहलाता है और एक महायुग का दसवां हिस्सा अर्थात् चार लाख बत्तीस हजार वर्ष का एक कलियुग होता है। इस प्रकार एक कल्प में दस हजार कलियुग होते हैं। एक कलियुग का दुगुना द्वापर तीन गुना त्रेता और चार गुना सतयुग होता है।

प्रश्न - इस कलियुग के समाप्त होने में अब कितना समय बाकी है ?

उत्तर--अब १९६० में कलियुग के ५०६० वर्ष बीत चुके हैं और ४२६९४० वर्ष शेष हैं या इस प्रकार समझिये, कि यदि एक कलियुग २४ घंटे अर्थात् एक दिन रात के बराबर मान लें, तो अब तक लगभग १७ मिनट बीत चुकी हैं और २३ घंटे ४३ मिनट कलियुग के समाप्त होने में शेष हैं।

प्रश्न--बड़े बड़े इतिहासकार सृष्टि की उत्पत्ति ईसा की सन् ईस्वी से अधिक से अधिक आठ सात हजार वर्ष पूर्व बतलाते हैं। जहां आप अरबों वर्षों की गणना सिद्ध कर रहे हैं। इसमें इतना मतभेद क्यों है ?

उत्तर--जो गणना हमने सिद्ध की है वह तो ज्योतिष विद्या पर आधारित है और उन इतिहासकारों की गणना केवल मनघड़न्त और कल्पित है। उनकी गणना को यदि स्वीकार किया जाए तो ज्योतिष विद्या की कोई भी गणना सत्य सिद्ध नहीं हो सकती। जो इतिहासकार सृष्टि की उत्पत्ति आठ सात हजार वर्ष से मानते हैं, वह जगत की तमाम घटनाओं को इसी अवधि में रखना चाहते हैं। उन इतिहासकारों की विचारधारा सिमेटिक (Semitic) विचारधारा पर निर्भर होती है, इसलिए माननीय नहीं है। अब तो सभी वैज्ञानिक सृष्टि की उत्पत्ति दो अरब वर्षों के लगभग मानकर सिद्ध करने लगे हैं।

प्रश्न--आप सृष्टि उत्पत्ति की अन्य सभी विचारधाराओं का खण्डन तो करते हैं, किन्तु सृष्टि उत्पत्ति के विषय में अपनी विचारधारा कुछ भी नहीं बतलाते ?

उत्तर--सृष्टि उत्पत्ति के विषय में हम पीछे भी कुछ बतला चुके हैं किन्तु संक्षिप्त रूप से फिर समझ लीजिए—

यह सृष्टि प्रवाह से अनादि है। सृष्टि के पश्चात् प्रलय और प्रलय के पश्चात् सृष्टि सदा से होती चली आई है और सदा तक ऐसा ही चक्र चलता रहेगा।

प्रलय हो जाने पर और सृष्टि उत्पन्न होने से पूर्व ब्रह्मांड की अस्त दशा (गैर महसूस हालत) होती है। उस समय न कोई मरता है और न कोई उत्पन्न होता है, न रात होती है और न दिन होता है। परमात्मा की सामर्थ्य (कुदरत) जो अतिसूक्ष्म और ब्रह्मांड से परम (बरतर), अकारण (बेइल्लत) है मौजूद रहती है।

परमात्मा सृष्टि इस प्रकार रचता है, कि प्रलय की अवधि समाप्त हो जाने पर अपनी सामर्थ्य और ज्ञान से उस सूक्ष्म और शून्य प्रकृति में हलचल पैदा कर देता है। उस हलचल से जो तत्व बनता है उसका नाम महतत्व होता है। महतत्व में परिवर्तन किए जाने से अहंकार उत्पन्न होता है। अहंकार से पांच तनमात्रा अर्थात् रूप (Form), रस (Taste), स्पर्श (Touch), शब्द (Sound) और गन्ध (Smell) उत्पन्न होते हैं। इन तनमात्राओं से अलग-अलग पांच तत्व (Elements) पैदा किए जाते हैं। रूप से अग्नि, रस से जल, गन्ध से पृथ्वी, स्पर्श से वायु और शब्द से आकाश ज्ञात होता है। इन पांचों भूतों में परमात्मा अपने अनन्त ज्ञान से अलग २ मुख्य गुण उत्पन्न करता है, किन्तु इनमें से किसी एक में एक दूसरे के भी कुछ गुण सम्मिलित होते हैं—जैसे अग्नि में दो गुण—रूप और स्पर्श, जल में तीन गुण—रूप, रस और स्पर्श, वायु में केवल एक गुण—स्पर्श का और

आकाश में भी एक ही गुण शब्द का है। इसके पश्चात् पांच कर्मेन्द्रियां—हाथ, पैर, जबान (बोलने की शक्ति) और दो मल-मूत्र त्यागने की इन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां—आँख, नाक, कान, रसना और त्वचा (खाल) तथा ग्याहरवां अन्तःकरण (मन, बुद्धि और अहंकार) उत्पन्न करता है।

इन पांचों भूतों से यह विचित्र ब्रह्मांड भांति २ की औषधि, फल-फूल, पेड़, अन्न और रंग-रूप आदि उत्पन्न होते हैं। अन्नादि से वीर्य और वीर्य से शरीर पैदा करता है। सबसे पहले दूध देने वाले पशु आदि फिर अन्य पशु-पक्षी और कीट-पतंग आदि और इन सबके पश्चात् मनुष्य उत्पन्न किए जाते हैं। सृष्टि के आरम्भिक काल में समस्त जीवधारी बिना मां-बाप के संयोग के जवान अवस्था में पैदा किए जाते हैं। समस्त जीवधारी अपनी पहली सृष्टि के क्रमानुसार ऊँच-नीच अच्छी या बुरी योनियों में परमात्मा के ज्ञान और न्याय अनुसार पैदा होते हैं। इस प्रकार की सृष्टि को अमैथुनी सृष्टि कहते हैं।

कुछ समय तक अमैथुनी सृष्टि चलती है। इसके पश्चात् मैथुनी सृष्टि प्रारम्भ होजाती है। मैथुनी सृष्टि प्रारम्भ होने पर परमात्मा अपने अटल ज्ञान (वेद) का प्रकाश कुछ उत्तम कर्मों वाले मनुष्यों के हृदयों में अपनी प्रेरणा से इस कारण करता है, ताकि मनुष्यों को ब्रह्मांड का आवश्यक ज्ञान, सृष्टि के भोगने, पाप-पुण्य तथा अच्छे-बुरे कर्म करने के परिणामों का पता चल जाए। अतः इसके पश्चात् पाप और पुण्य के कर्मानुसार परिणाम उत्पन्न होने लगते हैं और फिर यह दशा प्रलय तक बराबर चलती रहती है। सृष्टि उत्पत्ति के विषय में पूर्ण रूप से जानने के लिए यजुर्वेद का ३१ वां अध्याय तथा अन्य प्रमाणित ग्रन्थों को देखिए।

चतुर्थ खण्ड

प्रश्न—क्या सभी नास्तिक अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाणवादी (Positivist), भाववादी (Agnostics), मायावादी (Materialists), आनन्दवादी (Hedonists), यान्त्रिकवादी (Accidentalists or Machanists), स्वाभाववादी (Naturalists) और साम्यवादी (Communists) अज्ञानी हैं ? उन विद्वानों ने तो काफ़ी मनन करने के पश्चात् ईश्वर की सत्ता से इन्कार किया है। केवल आप ही ज्ञानी होने का गर्व क्यों करते हैं ?

उत्तर—हमने ज्ञानी होने का गर्व तो कभी नहीं किया। हम तो असत्य (Illusion) को छोड़कर सत्य (Reality) को ग्रहण करने के विषय में बातचीत कर रहे हैं। असत्य को ग्रहण करने से मनुष्य भ्रम में डूबा रहता है और वह दूसरों को भी भ्रम में डूबाने की चेष्टा करता है। होना तो यह चाहिए कि सत्य को पालेने के पश्चात् असत्य को छोड़ देना ही उचित है

जितनी प्रकार के नास्तिकों के आपने नाम लिए हैं, वह सब ईश्वर की सत्ता से इन्कार तो अवश्य करते हैं, किन्तु उनमें से एक प्रकार के नास्तिक का दूसरी प्रकार के नास्तिक से सृष्टि उत्पत्ति आदि के सिद्धान्तों में स्वयं काफी मत भेद है। ऐसी दशा में किस नास्तिक की बात मानी जाये और किसकी न मानी जाय। इसलिए सत्य को जानने के लिये सभी सिद्धान्तों की तुलना करके जो सिद्धान्त बुद्धिपूर्वक, ज्ञान-विज्ञान और अनुभव से सिद्ध हो जाय, उसको ग्रहण करने से ही जीवन सफल हो सकता है।

अज्ञानी वही माना जाता है, चाहे वह कितना ही पढ़ा लिखा क्यों न हो, जिसकी आत्मा पर यह तीन प्रकार के पर्दे पड़ जाते हैं—

(१) आत्मिक अज्ञान—किसी वस्तु के स्वरूप के प्रति अज्ञान का पर्दा।

(२) प्रमात्म अज्ञान—ईश्वर के अस्तित्व, गुण, कर्म और स्वभाव के प्रति अज्ञान का पर्दा।

(३) अनात्म अज्ञान—प्रकृति के गुण, कर्म और स्वभाव के प्रति अज्ञान का पर्दा। अज्ञान या अविद्या का पर्दा सूक्ष्म होता है। जब तक अज्ञान का पर्दा ज्ञान और विद्या से हटाया नहीं जाता, उस समय तक किसी वस्तु के वास्तविक स्वरूप और वास्तविक गुण, कर्म तथा स्वभाव का अनुभव हो ही नहीं सकता। जो ईश्वर, जीव और प्रकृति के गुण, कर्म और स्वभाव को भली भांति नहीं जानता वह इस विषय में अज्ञानी ही कहलाता है, चाहे वह अन्य विषयों में कितना ही ज्ञानी क्यों न हो। अपनी विद्या का गर्व तो वह लोग करते हैं, कि जो प्राकृतिक असंख्य नियमों में से किन्हीं दो चार नियमों की जानकारी करके कोई किसी प्रकार का अविष्कार कर देते हैं। ऐसे लोग ही उस सर्व शक्तिमान् और सर्वज्ञानवान् परमेश्वर को, कि जिसने सांसारिक पदार्थों में असंख्य गुण उत्पन्न किये हैं, भूल जाते हैं। जो मनुष्य जड़ पदार्थों को शक्तिशाली और ज्ञानवान् मान कर उन्हीं को बिना कर्ता के जगत का रचयिता समझ लेते हैं और वास्तविक रचयिता से मुँह मोड़ लेते हैं। यदि उनको अज्ञानी न कहा जाय तो फिर आप ही बतलाइये कि क्या कहा जाये ?

प्रश्न--अच्छा बताइये तो ईश्वर कब से है और कब तक रहेगा ?

उत्तर--ईश्वर अनादि और अनन्त अर्थात् सदा से है और सदा तक रहेगा।

प्रश्न--आप ईश्वर को अनादि और अनन्त किस प्रकार सिद्ध करते हैं ?

उत्तर--ईश्वर एक रस है। उसमें विकार नहीं है। एक रस पदार्थ मिश्रण नहीं होता। जो मिश्रण नहीं होता उसकी उत्पत्ति भी नहीं होती। वह अवश्य अनादि और अनन्त होता है।

प्रश्न--आप विकार किसे कहते हैं ?

उत्तर--जो वस्तु उत्पन्न होती है या जिसके शरीर होता है, उसमें ६ प्रकार के विकार होते हैं—(१) उत्पन्न होना। (२) बढ़ना। (३) एक सीमा तक बढ़कर रूक जाना। (४) आकृति (शक्ल बदलना) (५) घटना और (६) विनाश होना। ब्रह्म में कोई विकार नहीं है। इसलिए वह अनादि और अनन्त है।

प्रश्न—ब्रह्म साकार है या निराकार है ?

उत्तर--ब्रह्म निराकार है, यह हम बतला ही चुके हैं। साकार मानने से ईश्वर में बहुत से दोष मानने पड़ेंगे। जिनका कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सकेगा। उन दोषों में से कुछ ये हैं—

(१) साकार मानने से वह नाशवान् और अनित्य मानना पड़ेगा, क्योंकि प्रत्येक साकार पदार्थ परमाणुओं के संयोग से उत्पन्न होता है। इसलिए उसका विनाश होना भी अनिवार्य है।

(२) साकार मानने से उसके रहने-सहने, पड़ने-बैठने, आराम करने, घूमने फिरने और कार्य आदि करने के लिए कोई न कोई स्थान मानना पड़ेगा। ऐसी दशा में वह सर्वदर्शी, सर्व व्यापी और सर्व अन्तर्यामी गुणों वाला नहीं रहेगा। फिर वह

सृष्टि उत्पत्ति, स्थिरता और प्रलय भी नहीं कर सकेगा और न ही किसी के अच्छे-बुरे विचार जानकर यथा योग्य न्याय कर सकेगा।

(३) साकार मानने से उसमें विकार मानने पड़ेगें और फिर उसका विनाश होना भी स्वीकार करना पड़ेगा।

(४) साकार मानने से उसके समस्त गुण, कर्म और स्वभाव परिमित (महदूद) मानने पड़ेंगे और एक देशी कहना पड़ेगा। ऐसी दशा में ईश्वर, ईश्वर ही नहीं रहेगा।

(५) साकार मानने से उसके दस इन्द्रियां तो माननी पड़ेगीं ही साथ ही यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उसे भूख-प्यास, सर्दी, गर्मी, भय, शंका, बुढ़ापा, दुर्बलता, दर्द पीड़ा आदि भी होंगे।

(६) साकार मानने से उसका कोई उत्पन्न करने वाला निराकार मानना पड़ेगा और यदि यह कहोगे कि ईश्वर ने अपना शरीर खुद बना लिया तो शरीर बनाने से पूर्व निराकार कहना पड़ेगा।

(७) साकार मानने और एक सांसारिक महाराजा की भांति जानने से उसे अपना राज-कार्य चलाने और प्रबन्ध करने के लिए राज्य-कर्मचारी, पुलीस और सेना आदि रखनी पड़ेगी। उसके न्यायालय में सांसारिक न्यायालय की भांति झूठ, कपट, रिश्वत आदि भी बुरी बातें होगीं और फिर वह यथायोग्य न्याय नहीं कर सकेगा।

प्रश्न—आपके मान्य शास्त्र तो ईश्वर के अवतार धारण करके साकार होजाने का पाठ पढ़ाते हैं और आप साकार होने का खण्डन करते हैं यह मतभेद कैसा ?

उत्तर--अभी हमने पिछले प्रश्न के उत्तर में यह सिद्ध कर दिया है कि ईश्वर साकार नहीं है। वही उत्तर अवतारवाद पर भी पूर्ण रूप से लागू होता है। किन्तु इस पर भी हम आपके मनन के लिए कुछ अधिक प्रकाश डाल रहे हैं। आप मनन करके सच्चे हृदय से स्वयं बतलायें कि अवतारवाद सिद्ध होता है कि नहीं ?

अवतार के अर्थ नीचे आने या उतरने के हैं। हम ईश्वर को सर्व व्यापक और अन्तर्यामी सिद्ध कर चुके हैं, तो फिर ईश्वर का कहीं से आना या उतरना स्वयं निरर्थक सिद्ध हो जाता है।

ईश्वर बिना बदले अवतार धारण नहीं कर सकता। बदलने वाला पदार्थ सर्व व्यापक अन्तर्यामी और सर्व शक्तिमान् नहीं हो सकता। बदलने वाले सब पदार्थ दुर्बल होते हैं। उनका एक दिन विनाश भी होता है। तो क्या आप ईश्वर के अवतार धारण कर लेने से ईश्वर में यह दुर्बलता और विनाश आदि गुण स्वीकार करेंगे ? जब ईश्वर अवतार धारण करके साकार हो जायेगा तो वह सर्व व्यापक और अन्तर्यामी नहीं रह सकता। तो फिर इस अनन्त ब्रह्मांड और लोक-लोकान्तर आदि, कि जिनमें क्रियायें हर लहमा होती रहती हैं, उनका प्रबन्ध आदि कौन करेगा ? याद रखिए, भगवान अजन्मा है। वह एक रस और पूर्ण है। वह खंडित भी नहीं हो सकता। इसलिए भी ईश्वर अवतार धारण नहीं कर सकता।

कुछ लोग यह कहा करते हैं, कि पाप को हटाने और दुष्टों का संहार करने के लिए ईश्वर अवतार धारण किया करता है। क्यों जी ! ईश्वर अपनी सामर्थ्य से दुष्टों को उत्पन्न तो कर

सकता है, किन्तु क्या नौ मास तक गर्भ की गन्दगी में निवास किए बिना उनका संहार नहीं कर सकता? जब ईश्वर सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र आदि को बिना अवतार धारण किए उत्पन्न और छिन्न-भिन्न कर सकता है, तो दुष्टों का संहार करने के लिए अवतार धारण करने की क्यों विशेष आवश्यकता पड़ती है?

अवतारवाद पर कोई अपना विश्वास जो चाहे जमा ले, किन्तु अवतारवाद ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव के प्रतिकूल होने से सिद्ध नहीं होता। हां! यह तो कह सकते हैं, कि ईश्वर अपनी सामर्थ्य से कुछ व्यक्तियों के अन्दर कुछ विशेष और असाधारण गुण तथा शक्ति देकर उत्पन्न कर देता है, जो दुष्टों का संहार करके अत्याचार को दबाने में सफल हो जाते हैं। ऐसे विशेष व्यक्तियों को यदि आप अंश-अवतार के नाम से पुकार लें तो चलो उसमें कोई बात नहीं है।

प्रश्न--वामदेव ऋषि, इन्द्र और श्री कृष्ण आदि महापुरुष अपने को ईश्वर कहते थे। इससे यह सिद्ध होता है कि वह ईश्वर के अवतार थे।

उत्तर--अवतार वाद के बारे में तो हम काफी प्रकाश डाल चुके हैं। अब यहां दोहराने की आवश्यकता नहीं है। कोई जीवात्मा ईश्वर का अंश नहीं यह भी हम सिद्ध कर चुके हैं। ईश्वर और जीव भिन्न २ हैं। उनके गुणों में भी अन्तर है। उन महापुरुषों ने अपने को इसलिए ईश्वर कहा था, क्योंकि उनमें विरोध नहीं रहा था, वह परमात्मा से अधिक प्रेम के कारण तथा उपचार से अपने को ईश्वर कह देते थे। ब्रह्म जीव के अन्दर विद्यमान तो है ही, किन्तु मूर्ख लोग उसकी खोज में इधर-उधर ठोकरें खाते रहते हैं। जो महापुरुष अपने अन्दर ब्रह्म को जान लेते हैं वही अपने को ब्रह्म कह दिया करते हैं।

प्रश्न—कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि ईश्वर संसार में अपना ज्ञान फैलाने और लोगों को सीधे रास्ते पर लगाने के लिए नबी, पैग़म्बर और रसूल भेजता है और वह अपना राज्य कार्य फरिश्तों आदि के द्वारा चलाता है। प्रलय होजाने के पश्चात् ईश्वर आकाश से पृथ्वी पर उतरकर समस्त मरे हुए मनुष्यों को क़ब्रों में ज़िन्दा करके और उन्हें वहां से निकलवाकर, मैदाने महशर में इकट्ठा कराकर उनके अच्छे और बुरे कर्मों का हिसाब करेगा और फिर सदा २ के लिए स्वर्ग या नरक में भेज देगा। इस सिद्धांत को आप मानते हैं या नहीं ?

उत्तर—हम इस सिद्धांत को सर्वथा नहीं मानते। यह सिद्धांत ईश्वरीय ज्ञान तथा गुण, कर्म और स्वभाव के विपरीत है। जो लोग अपने नबी, रसूल या पैग़म्बर के संसार में आने पर विश्वास करते हैं, साथ ही वह लोग दूसरों के नबी, रसूल या पैग़म्बर पर अपने नबी, रसूल या पैग़म्बर की प्रधानता सिद्ध करने के लिए लड़ते-मरते और रक्तपात करते चले आये हैं।

जब ईश्वर सर्व व्यापक अन्तर्यामी सर्व शक्तिमान् और निराकार सिद्ध हो चुका तो आकाश से उतरने और चढ़ने का प्रश्न स्वयं समाप्त होजाता है। फिर किसी नबी, पैग़म्बर या रसूल आदि भेजने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। ईश्वर का यथा योग्य न्याय हर समय होता रहता है। न्याय के लिए कोई निश्चित् तिथि या स्थान नियुक्त नहीं है। यदि प्रलय के पश्चात् न्याय होगा तो यह अन्धेरगर्दी ही समझी जायेगी। ईश्वर के न्याय में अरबों वर्षों की देर होना और उस समय तक क़ब्रों में रखना किसी प्रकार से भी उचित नहीं है। कहावत यह है कि न्याय में जितनी देर होती है न्याय का उतना ही महत्व कम हो

जाता है। (Justice delayed, Justice denied) अतः यह सिद्ध है कि जैसे ईश्वर अवतार धारण नहीं करता ऐसे ही उसे किसी नबी, रसूल और पैग़म्बर के भेजने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

प्रश्न--आपकी यह बात भली प्रकार सिद्ध नहीं होती और न ही मन को लगती है, कि ईश्वर निराकार से साकार नहीं हो सकता। देखिए! भाप निराकार है, किन्तु वही भाप ठंडी होकर बादल, बर्फ या जल बनकर साकार होजाती है। अग्नि निराकार है, किन्तु वही अग्नि प्रचण्ड होकर साकार बन जाती है। कहां तक कहा जाये संसार के सभी भौतिक पदार्थ निराकार से साकार और साकार से निराकार प्रतिदिन हम सब अपनी आंखों से देखते हैं। इसलिए मानना पड़ता है, कि ईश्वर भी निराकार से साकार हो जाया करता है।

उत्तर—आपने जो भी उदाहरण दिए हैं, वह ईश्वर पर लागू नहीं हो सकते। वास्तव में आप इस भेद को समझे नहीं। परमात्मा एक रस और नित्य है। वह परमाणुओं के संयोग से नहीं बना। एक रस पदार्थ कभी स्थूल नहीं हो सकता। इसलिए ईश्वर निराकार से साकार नहीं हो सकता। आपने जो भाप, अग्नि और अन्य भौतिक पदार्थों के उदाहरण दिये हैं, वह सब एक रस नहीं हैं। वह सब अनेक परमाणुओं के संयोग से बनते हैं। वही परमाणु पुनः स्थूल होकर बादल या बर्फ या जल या प्रचण्ड अग्नि का रूप धारण कर लेते हैं। इसी प्रकार अन्य भौतिक पदार्थ भी सूक्ष्म से स्थूल या स्थूल से सूक्ष्म होजाते हैं। सूक्ष्म पदार्थ तो स्थूल पदार्थ में व्यापक हो सकता है, किन्तु स्थूल पदार्थ सूक्ष्म पदार्थ में व्यापक नहीं हो सकता, जैसे अग्नि,

पृथ्वी और जल से सूक्ष्म है वह पृथ्वी और जल में व्यापक हो सकती है। आकाश और वायु अग्नि से सूक्ष्म हैं, इसलिए वह अग्नि में व्यापक हो सकते हैं।

प्रश्न—ईसाई हज़रत ईसा को ईश्वर का इकलौता बेटा और मुसलमान हज़रत मुहम्मद को अन्तिम पैग़म्बर मानने पर विश्वास करते हैं। आप उनके इस विश्वास पर विश्वास करते हैं या नहीं?

उत्तर—हम उनके इस विश्वास पर बिल्कुल विश्वास नहीं करते। यह विश्वास ज्ञान, विज्ञान, बुद्धि और अनुभव के सर्वथा विपरीत है।

ईश्वर के बेटा मानने से ईश्वर को साकार मानना पड़ेगा और साथ ही ईश्वर की स्त्री, विवाह आदि के बारे में बहुत से प्रश्न उत्पन्न हो जाते हैं, जिनका ईसाई संतोष जनक उत्तर नहीं दे पाते।

वास्तव में बात यह है, कि उस पुराने ज़माने में यूनान में यह एक साधारण रिवाज था, कि वह मान्य और पवित्र मनुष्यों को ईश्वर का बेटा कहकर पुकारा करते थे। उस ज़माने में जितने भी मान्य, प्रसिद्ध और पवित्र व्यक्ति उत्पन्न हुए, बहुधा वह सब ईश्वर के बेटे ही पुकारे गए—हरकुलिज़, पाईथागोरस और अफ़लातून आदि ईश्वर के बेटे कहलाते थे। सिकन्दर भी इब्ने-अल्लाह (Son of Zeus) कहलाता था। पुराने अहदनामा (Old Testament) में यह कहा गया है—नबी, फरीश्ते, आदम और सन्धि कराने वाले ईश्वर के बेटे हैं। दाऊद बादशाह मसीह है और खुदा का बेटा है। वह पलोठा बेटा है। ईश्वर उसका बाप है। यों तो जितनी जीवात्माएं हैं वह सभी ईश्वर के बेटे

हैं किन्तु ऊपर लिखे अभिप्राय से यदि हज़रत ईसा को भी ईश्वर का बेटा पुकारा जाए तो कोई दोष नहीं है। इसके अतिरिक्त इसमें कोई और तत्व नहीं हो सकता।

हज़रत मुहम्मद के अन्तिम पैग़म्बर होने का सिद्धांत तनिक भी तो मन को नहीं लगता। जैसा कि हम सिद्ध कर चुके हैं कि प्रलय होने में अभी दो अरब वर्ष के लगभग शेष हैं, तो क्या इस लम्बे काल में ईश्वर किसी देश या जाति में कोई महापुरुष उत्पन्न नहीं करेगा? ईश्वर की ओर से उत्पन्न न करने का प्रतिबन्ध लगाना ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव के विपरीत है।

ईश्वर के ज्ञान का दरवाज़ा कभी बन्द नहीं होता। प्रत्येक देश और जाति में योग्य मनुष्य उसको हर समय प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु उसको प्राप्त करने के लिए अति पवित्र जीवन बनाना पड़ता है। जगत में सब जाति और देशों में महापुरुष आते रहे हैं और प्रलय तक अवश्य आते रहेंगे।

हज़रत ईसा को ईश्वर का इकलौता बेटा और हज़रत मुहम्मद को अन्तिम पैग़म्बर मनवाने पर ईसाईयों और मुसलमानों में बहुत रक्तपात और लड़ाई झगड़े हुए। वास्तव में इस प्रधानता के मनवाने में राजनैतिक भेद और अपना-अपना संगठन दृढ़ बनाने की बात छिपी हुई है।

प्रश्न—आप ईश्वर को बार २ यह कहते चले आए हैं, कि वह सर्व शक्तिमान् है और साथ ही यह भी कहते हैं कि अभाव से भाव नहीं हो सकता अर्थात् वह जीव और प्रकृति उत्पन्न नहीं कर सकता। ऐसी दशा में आप ईश्वर को सर्व शक्तिमान् नहीं कह सकते। वह तो एक निर्बल और कमज़ोर

ईश्वर होगा, जो ईश्वर कहलाने के योग्य ही नहीं रहेगा। सर्व शक्तिमान् ईश्वर तो वही कहला सकता है, कि वहजो चाहे सो कर सके।

उत्तर—यदि हम ईश्वर को ऐसा मान लें कि वह जो चाहे सो कर सकता है, तो मैं आपसे पूछता हूं, कि क्या ईश्वर अपने जैसा कोई दूसरा ईश्वर उत्पन्न कर सकता है, और अपने को मार भी सकता है? क्या ईश्वर चोरी आदि पाप और नीच कर्म भी कर सकता है? क्या ईश्वर अपने अटल नियमों को तोड़ कर मनुष्य का गधा और गधे का मनुष्य बना सकता है? क्या ईश्वर अच्छे कर्मों वालों को दुःख और बुरे कर्म वालों को सुख और आनन्द दे सकता है? मित्रवर! ईश्वर और उसके गुण, कर्म तथा स्वभाव जब अनादि और अनन्त सिद्ध होजाते हैं, तो ईश्वर अपने अटल नियमों तथा गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध कुछ नहीं किया करता। जब ईश्वर के आधीन प्रकृति और जीव अनादि काल से बराबर चले आरहे हैं, और अनन्त काल तक ऐसा ही रहेगा तो उत्पन्न करने का प्रश्न कैसे और कहां उठता है? यदि प्रकृति और जीव को अनादि और अनन्त न मानकर किसी समय उनकी उत्पत्ति और प्रलय के पश्चात् विनाश स्वीकार करोगे तो, उस दशा में ईश्वर, ईश्वर नहीं रहेगा। ईश्वर कहलाता तभी है, जब उसके आधीन प्रकृति (समधा, इल्लत) और जीव हों। यह हम कई बार कह चुके हैं, कि अभाव से भाव और भाव से अभाव नहीं हो सकता। जो है वही आगे होता है और जो नहीं है वह कभी नहीं होता।

आप सर्व शक्तिमान् के अर्थ समझने में भ्रम में पड़े हुए हैं। सर्व शक्तिमान् के अर्थ केवल यह हैं, कि ईश्वर को अपने समस्त कार्य चलाने और यथायोग्य व्यवस्था रखने में किसी व्यक्ति या किसी पदार्थ की सर्वथा आवश्यकता न पड़े, वरन्

सब प्रकार की सामगरी उसके आधीन हो और वह अपनी अनन्त सामर्थ्य से अपने समस्त कार्य स्वयं पूर्ण रुप से चला सके।

दुःख तो यह है कि जो त्रुटि पूर्ण विचार एक बार कुछ लोग मस्तिष्क में जमा लेते हैं, बस फिर उसी की बार २ रट लगाते रहते हैं। बुद्धिमान मनुष्य तो सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाने पर सत्य को ग्रहण कर लेते हैं और असत्य को छोड़ देते हैं, किन्तु पक्षपाती लोग समझाये जाने पर भी समझने की चेष्टा नहीं करते। यदि ईश्वर को जीव और प्रकृति का रचयिता मान लिया जाय, तो इसमें जो कुछ दोष उत्पन्न होते हैं, उनकी ओर कुछ भी तो ध्यान नहीं देते। जब ईश्वर और उसके गुण, कर्म, स्वभाव अनादि सिद्ध होते हैं, तो किसी समय सृष्टि रचने के लिए प्रकृति और जीव को उत्पन्न करने से पहले ईश्वर क्या करता रहा? ऐसी दशा में उसके गुण कर्म और स्वभाव सब व्यर्थ और अनित्य मानने पड़ेंगें। जब गुण अनित्य तो गुणी भी अनित्य ही स्वीकार करना पड़ेगा, या यह गुण नैमितिक कहने पड़ेंगे और पूछना पड़ेगा कि वह किस पर दयालु था, किसका न्यायकारी था, किसको उत्पन्न करके स्थिर रखता था और किसका विनाश किया करता था? प्रलय के पश्चात् भी ईश्वर के यह सब गुण व्यर्थ ही कहने पड़ेंगे। इन दोषों का आप क्या उत्तर देंगे? हेरा फेरी और बकवास के अतिरिक्त आपके पास कोई भी सन्तोष-जनक उत्तर नहीं होगा। इसलिए ईश्वर के आधीन उसकी शक्ति अर्थात् प्रकृति और उसकी प्रजा अर्थात् जीव अनादि काल से चले आरहे हैं और अनन्त काल तक ऐसा ही रहेगा। ऐसा मानने से ईश्वर सच्चे अर्थों में ईश्वर रहेगा और उसके किसी गुण, कर्म और स्वभाव पर कोई दोष नहीं रहेगा।

प्रश्न—यदि परमेश्वर के आधीन किसी वजह से प्रकृति

और जीव न रहें, फिर तो ईश्वर प्रकृति और जीव का प्राधीन हो सकता है ?

उत्तर—प्रथम तो आप यह बतलाइये कि ईश्वर से महान ऐसा कौन है और कौन हो सकता है, कि जो ईश्वर से प्रकृति और जीव को छीन कर अपने आधीन कर सकता है ? प्रकृति स्वयं जड़ पदार्थ है, उसका ईश्वर के अधिकार से स्वयं निकल जाना तो असम्भव है। जीव अल्पज्ञ है, वह सर्वज्ञ, सर्व व्यापक, अन्तर्यामी और सर्वज्ञानी ईश्वर के अधिकार से निकल जाने में असमर्थ है। इसलिए प्रकृति और जीव ईश्वर की आधीनता से न कभी निकले और न निकल सकते हैं। ईश्वर अनादि काल से उनका स्वामी है और अनन्त काल तक स्वामी ही रहेगा

प्रश्न--जब आप अनादि और अनन्त ईश्वर के साथ जीव और प्रकृति को भी अनादि और अनन्त सिद्ध करते हैं, तो ऐसी दशा में तीन ईश्वर मानने पड़ेंगे।

उत्तर--आपने बुद्धि से काम न लेने की तो सौगन्ध खा रक्खी है, ऐसा प्रतीत होता है। क्यों जी ! तीन ईश्वर क्यों मानने पड़ेंगे ? तीन ईश्वर तो तब मानने पड़ेंगे, कि जब जीव और प्रकृति में भी ईश्वर के समान गुण, कर्म और स्वभाव माने जायें। हम बार २ सिद्ध कर चुके हैं, कि प्रकृति जड़ पदार्थ है। उसमें अनन्त और अनादि गुण के अतिरिक्त ईश्वर का और कोई गुण नहीं है। जीव भी अल्पज्ञ है, उसके सारे गुण भी अल्पज्ञ ही हैं। ईश्वर सर्वज्ञ है, उसके गुण, कर्म और स्वभाव अटल और सर्वज्ञ हैं, तो फिर प्रकृति और जीव ईश्वर कैसे हो सकते हैं ? यदि हम आपकी बात मान भी लें, तो फिर बतलाइये—बहुत से मनुष्य भी दयालु और न्यायकारी है और ईश्वर भी दयालु और

न्यायकारी है। बहुत से मनुष्य भी बहुत से पदार्थों के रचयिता हैं और ईश्वर भी रचयिता है। इसी प्रकार और भी ऐसे गुण हैं कि जो ईश्वर में भी हैं और मनुष्य में भी हैं। तो क्या ये सब ईश्वर माने जायेंगे? कदापि नहीं। इसलिए कहना पड़ता है कि ईश्वर एक है।

प्रश्न--वेदों के ज्ञाता अद्वैतवादी विद्वान् वेदों के आधार पर यह सिद्ध करते हैं, कि केवल एक ईश्वर ही है, वह ही उपादान कारण और निमित्त कारण है। ईश्वर ने जब यह इच्छा की कि मैं अनेक रूपों वाला बन जाऊं, तो वह अपनी सामर्थ्य से अनेक रूपों वाला बन गया। या यूं समझिये कि जैसे मकड़ी अपने अन्दर से तार निकाल कर जाला बनाती है और उसमें खेलती रहती है, किन्तु बाहर से कुछ नहीं लेती। ऐसे ही ब्रह्म भी अपने अन्दर से दुनिया के पदार्थ तथा जीवों को निकालकर स्वयं उसमें खेल रहा है।

उत्तर--अद्वैतवादी वेदों के आधार पर तो ऐसा नहीं कह सकते वरन् उनकी यह अपनी निजी विचारधारा है। वेदों में तो बहुत से सरल मन्त्र इस प्रकार के मौजूद हैं, कि जिनसे पूर्ण रूप से यह ज्ञात होता है, कि ईश्वर, जीव और प्रकृति अलग अलग तीन अनन्त और अनादि पदार्थ हैं।

यह नियम है, कि कारण (इल्लत) के गुण कार्य (मालूल) में होते हैं। जो गुण किसी पूरी वस्तु में होते हैं वे ही गुण उसके भाग में भी होते हैं। ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है। जगत् जिसे ब्रह्म के अन्दर से निकला हुआ कहते हो, वह भी चेतन और आनन्द स्वरूप होना चाहिए। यद्यपि ऐसा नहीं है। ब्रह्म दिखाई नहीं देता। जगत दिखाई देता है। ब्रह्म अनादि है जगत

अनादि नहीं है। ब्रह्म अपरिमित है। जगत परिमित (महदूद) है। इसके अतिरिक्त और भी भिन्नतायें हैं। तो फिर ब्रह्म जगत में से निकला हुआ कैसे हो सकता है? ब्रह्म से निकला हुआ तो तब सिद्धि होता, जब जगत् में भी समस्त वे ही गुण होते जो ईश्वर में हैं। इसलिए ईश्वर के अन्दर से निकला हुआ हो ही नहीं सकता। रहा अद्वैतवादियों का यह कहना—"ईश्वर ने जब यह इच्छा की कि मैं बहुत से रूपों वाला हो जाऊं, तो वह अपनी सामर्थ्य से बहुरूपों वाला बन गया। वह सज्जन इसका अर्थ सर्वथा उल्टा समझे हुए हैं। प्रलय काल में मोक्ष-स्वरूप जीवात्मा के अतिरिक्त और कोई जीवात्मा परमेश्वर की सत्ता को नहीं जानती। प्रलय काल में सब जीवात्मायें नींद जैसी दशा में होती हैं। अतः जब प्रलय काल समाप्त होजाता है, और सृष्टि रचने का समय आता है, उस समय ईश्वर कहता है कि मैं 'बहुरूपों वाला' हो जाऊं। इसका सीधा सच्चा अर्थ यह है, कि सृष्टि में जब जीवधारी उत्पन्न किये जाते हैं, तभी परमात्मा के बनाये हुये भिन्न २ रूप वाले पदार्थों को देखकर जीवधारी मनुष्य उसके नाना प्रकार के गुणों का ज्ञान प्राप्त करता है। जगत् में भिन्न २ और विचित्र पदार्थों की उत्पत्ति से ही ईश्वर अपनी सत्ता का परिचय देता है।

अद्वैतवादियों का मकड़ी का उदाहरण अद्वैतवादियों की विचारधारा को स्वयं काटता है। ध्यान दीजिए, कि मकड़ी अपने अन्दर से तार निकाल कर जाला बनाती है। मकड़ी का शरीर प्रकृति से बना हुआ जड़ रूप है। उस जड़ रूपी शरीर से जड़ रूपी जाला निकला। अतः शरीर जाले का उपादान कारण हुआ। उसका जीवात्मा जो जाले को शरीर से बाहर निकालता है, जाले का निमित्त कारण हुआ। यद्यपि ये दोनों कारण

उपस्थित हैं, मगर अलग २ हैं एक नहीं हैं। इसी प्रकार सर्व व्यापक परमात्मा ने अपने व्याप्य जड़ रूपी प्रकृति अर्थात् परमाणुओं से भिन्न २ रूपों वाला जगत उत्पन्न करके वह स्वयं उसमें खेल रहा है, अर्थात् व्यापक होरही है। बस समझने के लिए इतनी सी बात थी जिसका अफसाना बनाकर समय नष्ट किया गया।

प्रश्न—केवल अद्वैतवादी ही ईश्वर में से जगत् को निकला हुआ नहीं बतलाते, किन्तु अन्य ईश्वरवादी भी ऐसा ही सिद्ध करते हैं। इस्लाम तो कुरान के आधार पर अभाव से भाव मानता है और सृष्टि उत्पत्ति इस प्रकार बतलाता है, कि ईश्वर ने जब सृष्टि रचने की सोची तो कुन (हो जा) फैकून (पस होगया) कहा तो सृष्टि की सब चीजें बन गईं। फिर ईश्वर ने मिट्टी का पुतला बनाकर उसमें अपनी रूह (आत्मा) फूकीं और उसका नाम आदम रक्खा। उसकी पसली निकालकर उससे उसकी स्त्री हव्वा को उत्पन्न किया। इस जोड़े से मनुष्य मात्र की प्रणाली चली आरही है।

उत्तर—जो उत्तर हमने पिछले प्रश्न में अद्वैतवादियों के विषय में दिया है। वही उत्तर समेटिक (Semitic) मत वालों (यहूदी, ईसाई और इस्लाम) तथा अन्य इसी प्रकार की विचार-धारा वाले ईश्वरवादियों पर पूर्ण रूप से लागू होता है। इसलिए इस प्रश्न के उत्तर में कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।



प्रश्न--आपके भाई अद्वैतवादी तो यह मानते हैं कि ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है। आप भी ऐसा मानते हैं या नहीं ?

उत्तर--हां ! हम भी ऐसा ही मानते हैं किन्तु अद्वैत वादियों (Absolutists) इसका वास्तविक अर्थ नहीं समझे। इसका सीधा-सच्चा अभिप्राय यह है, कि मुक्ति-प्राप्ति के लिए ब्रह्म का पल्ला पकड़ना ही सत्य-साधन है और जगत अर्थात् माया के चक्कर में फंस कर मुक्ति प्राप्त करने के लिए जगत मिथ्या साधन है। इसीलिए ब्रह्म को सत्य और जगत को मिथ्या कहा जाता है। यदि इसके विपरीत अर्थ किए जायेंगे तो जगत मिथ्या होने के साथ अद्वैतवादियों को भी अपने आपको मिथ्या ही कहना पड़ेगा।

प्रश्न—वैज्ञानिक लोग तो प्रकृति से जीवन उत्पन्न कर सकते हैं। मि० हक्सले (Mr. Huxly) और मि० हैकल (Mr. Heackle) आदि वैज्ञानिक प्रकृति से जीवन उत्पन्न करने के विषय में आज से बहुत समय पूर्व घोषणा कर चुके थे। आज तो विज्ञान बहुत आगे बढ़ गया है। आज का वैज्ञानिक केवल जीवन उत्पन्न ही नहीं वरन् योनियां तक बदल सकता है।

उत्तर--ईश्वर, जीव, प्रकृति, तथा उनके गुण कर्म और स्वभाव के विषय में हम युक्तिपूर्ण आपके सभी प्रश्नों का खण्डन करके अपने सिद्धान्तों को सिद्ध कर चुके हैं। किन्तु यह सब कुछ हो जाने पर भी आप शंका में ही डूबे हुए हैं। डूबे रहिये, इससे अधिक हम क्या कर सकते हैं। गन्दगी का कीड़ा भी तो गन्दगी से निकलना नहीं चाहता।

आपके हैक्सले और हैकल ने जीवन उत्पन्न करने के विषय में जो अपनी पुस्तकों में लिखा है, उन सब वैज्ञानिकों को

हमने ही नहीं, विदेशी वैज्ञानिकों और दार्शनिकों ने भी अपने २ लेखों में फिटकार डालते हुए हंसी उड़ाई है। क्या मि० हैक्सले और हैकिल आदि ने उस समय और आज के वैज्ञानिकों ने इस समय जड़ से किसी चिंटी, मच्छर या भुनगे आदि का कोई बच्चा उत्पन्न करके संसार में किसी को दिखाया है ? मित्रवर ! भ्रम से निकलकर यह निश्चय कर लीजिये, कि जड़ से जीवन उत्पन्न नहीं हो सकता, नहीं हो सकता। इसके विपरीत जो कोई कुछ कहता है वह सब कल्पना, बकवास और असत्य है। जैसे जड़ से जीवन उत्पन्न नहीं हो सकता ऐसे ही योनि या लिंग भी नहीं बदला जा सकता।

प्रश्न--जीवात्मा तो उत्पन्न किया हुआ है, या ब्रह्म में से निकला है। अनादि और अनन्त नहीं हो सकता।

उत्तर--जीवात्मा अप्राकृतिक है। अप्राकृतिक पदार्थ उत्पन्न किया हुआ नहीं हो सकता। जब जीवात्मा मिश्रित नहीं है, तो उसकी उत्पत्ति भी नहीं है। जिसकी उत्पत्ति नहीं वह अवश्य अनादि और अनन्त है। जिसकी उत्पत्ति होगी उसका नाश भी होना जरूरी है। ऐसा नहीं हो सकता कि एक ओर तो उत्पत्ति मानली जाय और दूसरी ओर अवनाश कह दिया जाय। एक किनारे का दरया कभी नहीं होता। आत्मा के अर्थ व्यापक के हैं, जो व्याप्य के बिना हो ही नहीं सकता। आप जो जीव का उत्पन्न होना देखते हैं, वास्तव में यह उत्पन्न होना नहीं है, यह तो आवागमन का चक्र है। जीवात्मा सूक्ष्म है। वह जगह नहीं घेरता। वह हाथी जैसे बड़े से बड़े शरीरधारी और छोटे से छोटे कीट पतंग आदि में रह सकता है। जीवात्मा को न तलवार काट सकती है, न आग जला सकती है, न पानी गला सकता है और न हवा सुखा सकती है। अतः जीवात्मा उत्पन्न किया हुआ नहीं है।

जीव ईश्वर से नहीं निकला और न निकल सकता है, यदि जीव ईश्वर में से निकला हुआ होता तो उसमें ईश्वर जैसे ही समस्त गुण होने चाहियें थे किन्तु नहीं हैं।

अब तनिक इस प्रकार सोचकर मनन कीजिये, कि यदि ईश्वर ने जीव और प्रकृति को अपने शरीर से निकाला, अपने हृदय से निकाला, अपने जीव से निकाला, अपने प्रकाश (नूर) से निकाला, अपने पैर से निकाला, अपने गले से निकाला, अपने धड़ से निकाला, अपनी नाक से निकाला, अपनी जबान से निकाला, अपनी आंख से निकाला, आकाश से निकाला, फर्श से निकाला, यहां से निकाला, वहां से निकाला, ग़रज़े कि जहां से भी निकाला वहां जीव और प्रकृति मौजूद थे, वरना निकालना व्यर्थ सिद्ध होता है। अतः जीव और प्रकृति अनन्त और अनादि हैं, किसी भी युक्ति या दृष्टि से देखलो, इसके अतिरिक्त बकवास करने से कोई लाभ नहीं है।

प्रश्न—जब आप परमेश्वर को पूर्ण ज्ञानवान और सृष्टि रचयिता मानते हो, तो क्या उसे जीव उत्पन्न करने का ज्ञान नहीं है? यदि ज्ञान नहीं है, तो ईश्वर, ईश्वर नहीं रहता और यदि ज्ञान है तो क्यों उत्पन्न नहीं कर सकता?

उत्तर—जानने और बनाने में अन्तर है। सच्चा ज्ञान वही है कि जो जैसी वस्तु हो, उसको वैसा ही जाने और उसमें जो जो गुण हों वह उस से छिपे न रहें। इस प्रकार जानने से उस वस्तु का बनाना आवश्यक नहीं होता है। जैसा कि हमने अभी सिद्ध किया है कि जीव द्रव्य (मुफ़रद) है, उसके बनाने का प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता। द्रव्य अनन्त और अनादि होता है। उसका नाश भी कभी नहीं होता।

प्रश्न—ईश्वर और जीव में भेद नहीं है। यदि कोई भेद है तो बतलाइये ?

उत्तर—एक नहीं बहुत से अन्तर हैं—जीव में ज्ञान और अज्ञान दोनों मिले रहते हैं। परमात्मा में अज्ञान नाममात्र भी नहीं है। जीव, मन और प्राण के बिना कोई कर्म नहीं कर सकता। परमात्मा शुद्ध स्वरूप है, वह प्राण और मन के बिना अपने सब कार्य करता है। जीव सूक्ष्म है परमात्मा अति-सूक्ष्म है। जीव अल्पज्ञ है, परमात्मा सर्वज्ञ है। जीव शरीर धारण करता है, परमात्मा शरीर धारण करने से रहित है। जीव का विधान और नियम अटल नहीं होते और ईश्वर का विधान तथा नियम अटल होते हैं।

प्रश्न—ईश्वर और जीव में भेद तो आपके शास्त्र नहीं मानते। आप दोनों को अलग अलग बतलाते हैं। यह आप किस आधार पर कह रहे हैं ? देखिये ! उपनिषदों में साफ लिखा है "अयम् आत्मा ब्रह्म","अहम ब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूँ। तत्व मसि, ए जीव तू वही ब्रह्म है और नहीं।

उत्तर—वेद और उपनिषद् आदि सभी शास्त्रों में ब्रह्म और जीव को अलग अलग सिद्ध किया गया है। आप उपनिषदों के उन वाक्यों का वास्तविक अर्थ न समझने के कारण ऐसे अर्थ कर रहे हैं। जहां जहां यह वाक्य आये हैं उनके प्रसंग से मिलाकर अर्थ इस प्रकार होते हैं—

अयम् आत्मा ब्रह्म—यह वाक्य परमात्मा के प्रत्यक्ष हो जाने पर कहा जाता है कि मेरा यही आत्मा है।

अहम् ब्रह्मस्मि—इसके अर्थ यह हैं कि ब्रह्म मुझ में व्यापक है और मैं ब्रह्म में व्यापक हूं। यह वाक्य वह भक्तजन

जो परमात्मा के प्रेम में मग्न हो जाते हैं, वही कह दिया करते हैं।

तत्व मसि—इसका भी वही अर्थ है जो हम ऊपर लिख चुके हैं।

प्रश्न—आपने उत्पत्ति और विनाश के स्थान पर आवागमन का चक्र बतला दिया। आवागमन का चक्र तो एक बहुत बड़ा जंजाल है, यह न मन को लगता है और न ही किसी की समझ में आता है। भला यह कौन बुद्धिमान् स्वीकार करेगा, कि मनुष्य का जीवात्मा हाथी, घोड़े, गधे, बैल और कीट पतंग आदि योनि में जाकर सुख-दुःख भोगता है? आपके सिद्धान्त से तो सिमेटिक मतवाले (यहूदी, ईसाई और मुसलमान) ही एक बहुत सरल यह सिद्धान्त बतलाते हैं, कि ईश्वर ने जैसी योनियां उत्पन्न करनी उचित समझीं वैसी ही उत्पन्न कर दीं। जैसे माली अपने बाग़ में भांति २ के छोटे-बड़े वृक्ष और फूल पत्ती आदि लगाता है, ऐसे ही परमात्मा ने यह अच्छी-बुरी योनियां देकर यह सुख-दुःख दे दिया है। उनका यह भी कहना है, कि भिन्न २ प्रकार की योनियां जीवात्माओं को आजमाने के लिए दी हैं। ईश्वर को अधिकार है, कि वह जिसको चाहे, जिस योनि में उत्पन्न कर दे।

उत्तर—आपके मन को तो ईश्वर की सत्ता और उसका सृष्टि, रचयिता होना भी नहीं लगता था। किन्तु आपको युक्ति-पूर्वक समझाने से जैसे ईश्वर की सत्ता समझ में आ गई है, ऐसे ही आवागमन का चक्र भी समझ में आ जायेगा। आवागमन का सिद्धान्त वास्तव में गम्भीर तो है, किन्तु बुद्धि से काम लेने पर सरलता से समझ में आ सकता है। आप स्वयं इन अच्छी बुरी और ऊंच नीच योनियों को देखकर अवश्य

यह कहेंगे, कि उत्पन्न करने वाले ने बिना किसी कारण के तो यह भिन्न २ प्रकार की योनियां और दुःख सुख नहीं दिया होगा! आवागमन के चक्र के विषय में विस्तारपूर्वक बातचीत तो इस समय नहीं हो सकती। केवल इसी विषय पर विस्तारपूर्वक बात चीत किसी और दिन करेंगे। अब तो संक्षिप्त में समझ लीजिए।

आपने माली का उदाहरण दिया है, कि वह अपने बाग़ में जो २ वृक्ष लगाना उचित समझता है, वह वही वृक्ष लगा देता है। उसको कोई रोक नहीं सकता। यह उदाहरण आवागमन के सिद्धान्त की पुष्टि करता है, काटता नहीं। यदि माली सोच-समझकर और बुद्धि को प्रयोग में लाकर जहां २ जिस वृक्ष का लगाना उचित समझता है, वहां २ वहीं वृक्ष लगाता है, तो वह बुद्धिमान कहलाता है। और यदि वह माली अपने बाग में बिना विचारे झाड-झूण्ड आदि और ऐसे वैसे वृक्ष यों ही लगाता चला जाय, तो वह बुद्धिमान नहीं कहलाएगा। ऐसा करने में भी माली को रोकता कोई नहीं। बस जैसे बुद्धिमान माली सोच समझकर अपने बाग में वृक्ष लगाता है, ऐसे ही ईश्वर भी अपने ज्ञान और यथायोग्य न्याय को ध्यान में रखकर यह भिन्न प्रकार की योनियां देता है।

दूसरे आपने कहा कि यह भिन्न २ प्रकार की योनियां जीवात्माओं को आज़माने के लिए दी गई हैं। मैं पूछता हूं ईश्वर क्या आज़माना चाहता है? यही आज़माना चाहता होगा कि देखूं कौन २ जीवात्मा मेरी पूजा, उपासना, प्रार्थना और आज्ञा पालन करता है। दुःख की बात है, कि आप यह भी नहीं जानते कि केवल मनुष्य योनि ही कर्म योनि है। मनुष्य योनि के कर्मों के आधार पर ही दूसरे जन्म में अच्छी और बुरी अर्थात् मनुष्य, हाथी, घोड़ा, गधा, बैल, बन्दर, सूअर, कुत्ता और

कीट-पतंग आदि योनियां प्राप्त होती हैं। मनुष्य योनि को छोड़ कर शेष सब योनियां तो भोग योनियां हैं। उनकी आजमायश का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। यदि ईश्वर मनुष्यों की जीवात्माओं को आजमाना चाहता है, तो ईश्वर को अज्ञानी कहना पड़ेगा, क्योंकि आजमाया वही करता है जो अज्ञानी होता है। ईश्वर तो सर्वज्ञानी है। वह सबके मन की सब बातें जानता है। ईश्वर के विषय में इस प्रकार का प्रश्न करके ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव के महत्व को कम करने की चेष्टा न कीजिये। आपके इस प्रश्न से ईश्वर का ज्ञान, सर्वज्ञता और न्याय आदि गुण व्यर्थ हो जाते हैं। एक भी गुण व्यर्थ हो जाने से ईश्वर, ईश्वर नहीं रहता।

मनुष्य, मन, वचन और कर्म से अच्छे या बुरे कर्म करता ही रहता है, उनका यथायोग्य फल आवागमन के अतिरिक्त किसी और ढंग से पूरा हो ही नहीं सकता।

आप आवागमन का नाम सुनकर घबरा क्यों जाते हैं? इस आवागमन के चक्र से तो जगत का कोई पदार्थ भी बचा हुआ नहीं है। ध्यान देकर देख तो लो। सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र आदि बार २ चक्कर खाते हुए आवागमन कर रहे हैं। प्राकृतिक पदार्थ जिनको आप रोज अपनी आंखों से बनते बिगड़ते देखते हैं, वह भी प्रकृति का आवागमन का चक्र है। यह प्रकृति का उत्पन्न होना या नाश होना नहीं है। ऐसे ही जीवात्मा का भी आवागमन का चक्र है। अज्ञानी लोग गहरी बातों तक नहीं जा सकते।

प्रश्न—क्या कोई मनुष्य कभी इस आवागन के चक्र से निकला भी है और यदि कोई निकला है तो किस विधि से निकला है?

उत्तर--सभी देश-देशान्तरों में सदा से कुछ न कुछ पवित्र आत्माएं उत्पन्न होती रही हैं और होती रहेगीं। वह अवश्य इस चक्र से निकली हैं और निकलती रहेंगी। किन्तु इस चक्र से निकलना बच्चों का खेल नहीं है। जीवात्मा को शुद्ध और पवित्र बनना पड़ता है। धर्मानुकूल आचरण बनाकर सत्य के द्वारा परमात्मा को प्राप्त करना होता है। अधर्म, कुसंगत कुसंस्कार और वासनाओं से अलग रहना पड़ता है।

प्रश्न—आवागमन के चक्र से निकलकर फिर क्या होता है ?

उत्तर—आवागमन के चक्र से निकलकर जीवात्मा मुक्त हो जाता है। उसी दशा का नाम मोक्षपद या मुक्ति या परमगति या ब्रह्मलोक प्राप्ति है।

प्रश्न—मुक्त हो जाने पर क्या क्या पदार्थ, क्या २ सुख और आराम मिलते हैं ?

उत्तर--मुक्त होजाने पर यह सांसारिक सामान हाथी, घोड़े, महल, चांदी-सोने के आभूषण, रेशमी कपड़े, शराब, कबाब, कुंआरी सुन्दर स्त्रियां और सुन्दर लड़के आदि तो कुछ नहीं मिलता। वहां तो वह आनन्द मिलता है, कि जिसकी व्याख्या इस वाणी से नहीं की जा सकती, किन्तु उसे मुक्त आत्मा ही जानता है। इतना तो हम भी कह सकते हैं, कि यह सांसारिक सुख मुक्ति के आनन्द के समक्ष सब हेच है। मुक्त जीवात्मा के अन्तःकरण की गांठ टूट जाती है और पाप-पुण्य सब समाप्त होजाते हैं। समस्त प्रकार की शंकायें नष्ट होजाती हैं। तीनों प्रकार के दुःख अर्थात् आध्यात्मिक दुःख (आत्मा सम्बंन्धी दुःख जो अपने अन्दर से उत्पन्न होते हैं) आधिभौतिक

दुःख (जो दूसरे प्राणियों या अन्य पदार्थों से दुःख होते हैं) और आधिदैविक दुःख (मन और इन्द्रियों की चंचलता के कारण जो दुःख होते हैं) से छूट जाता है। मुक्त जीवात्मा परमात्मा रूपी गंगा के सरोवर में गोते लगा २ कर आनन्द प्राप्त करता है।

प्रश्न—मुक्ति में यह स्थूल शरीर रहता है या नहीं ?

उत्तर—मुक्ति में यह स्थूल शरीर नहीं रहता, केवल स्वाभाविक या सूक्ष्म शरीर रहता है।

प्रश्न—यह स्वाभाविक या सूक्ष्म शरीर कैसा होता है ?

उत्तर—सूक्ष्म शरीर में पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच सूक्ष्म भूत, मन और बुद्धि होते हैं। इसके अतिरिक्त जीवात्मा में जो स्वाभाविक २४ प्रकार की शक्तियां होती हैं, उसी का नाम स्वाभाविक शरीर है। यह शक्तियां शरीर छोड़ने या मुक्त होजाने पर भी जीवात्मा में मौजूद रहती हैं। वह शक्तियां यह हैं:—

(१) बल, (२) पराक्रम, (३) आकर्षण, (४) प्रेरणा, (५) भीषण, (६) गति, (७) विवेचन, (८) क्रिया, (९) उत्साह, (१०) स्मरण, (११) निश्चय, (१२) इच्छा, (१३) प्रेम, (१४) द्वेष, (१५) संयोग, (१६) वियोग, (१७) संयाजक, (१८) विभाजक, (१९) श्रवण, (२०) स्पर्श, (२१) दर्शन, (२२) आस्वादन, (२३) गन्ध और (२४) ज्ञान।

प्रश्न—मोक्ष में बिना इस भौतिक शरीर के मुक्त जीवात्मा क्या खाक आनन्द प्राप्त करता होगा ?

उत्तर—आनन्द प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म शरीर और स्वाभाविक गुण जीवात्मा के साथ रहते हैं, उन्हीं से आनन्द प्राप्त करता है। मुक्त जीवात्मा जब सुनना, स्पर्श करना, स्वाद

लेना, सूंघना, संकल्प-विकल्प करना, विश्वास करना, याद करना और अहंकार करना आदि चाहता है तो अपनी स्वाभाविक शक्ति से यह सब कुछ कर लेता है। मुक्त जीवात्मा सांसारिक दुःख-सुख से अलग रहकर परमात्मा के रचे हुए असंख्य लोक-लोकान्तरों को देखता है और शुद्ध मन से सब संकल्प और कामनाओं को प्राप्त होता है। कहने का प्रयोजन यह है कि जिस जिस आनन्द की इच्छा करता है वह पूर्ण होजाती है। मुक्त जीवात्मा के समस्त विचार, संकल्प और कामनायें शुद्ध और पवित्र होती हैं।

प्रश्न—मुक्त जीवात्मा को यह आनन्द कब तक मिलता रहता है ?

उत्तर—इस आनन्द की अवधि बहुत लम्बी है। इसको यों समझिये कि जितना काल सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय में ३६ हजार बार लगता है, उतनी अवधि मुक्ति की होती है। या यों कह लो कि ४३ लाख २० हजार वर्ष की एक चतुर्युगी, दो हजार चतुर्युगी की एक महारात्रि, तीस महारात्रि का एक महीना, ऐसे १२ महीनों का एक वर्ष, और ऐसे १०० वर्षों का एक महाकल्प होता है। एक महाकल्प बराबर है ३१ नील १० खरब और ४० अरब वर्ष, यही अवधि मुक्ति की है। इस लम्बी अवधि को देख कर ही तो मुक्ति की अवधि सदा २ के लिये कह दिया करते हैं।

प्रश्न—आप ईश्वर को नित्य और आनन्द स्वरूप कहते हैं और जीव भी मुक्ति पाकर आनन्दमय होजाता है तो फिर आत्मा और परमात्मा एक क्यों नहीं हो सकते ?

उत्तर—मुक्त जीवात्मा आनन्दमय और शुद्ध स्वरूप होकर भी अल्पज्ञ और परिमित गुण, कर्म और स्वभाव वाला

ही रहता है, जबकि परमात्मा आनन्दस्वरूप, अनन्त ज्ञान, गुण कर्म और स्वभाव वाला है। परिमित गुण, कर्म, स्वभाव वाली वस्तु अपरिमित गुण कर्म स्वभाव वाली वस्तु नहीं बन सकती चाहे वह जितनी उन्नति क्यों न कर ले। इसलिए ईश्वर और जीव एक नहीं हो सकते।

आत्मा और परमात्मा के एक होने के लिए उनमें समस्त गुण एक जैस होने चाहियें। कुछ गुण एक जैसे होने से भी एक नहीं हो सकते। देखिए। पृथ्वी जल और अग्नि यह तीनों जड़ पदार्थ हैं और यह तीनों दिखलाई भी देते हैं। यह तीनों पदार्थ जैसे एक नहीं हो सकते ऐसे ही आत्मा और परमात्मा भी एक नहीं हो सकते।

प्रश्न—बहुत से विद्वान् कहते हैं, कि जीव मुक्ति पाकर ईश्वर होजाता है और फिर वह कोई कर्म नहीं करता ?

उत्तर—जीव चेतन और ज्ञानवान् है। उसका स्वभाव कुछ न कुछ काम करने का है। मुक्ति में जीव को यदि क्रियाहीन और चेष्टाहीन मान लिया जाए, तो वह क्या खाक आनन्द अनुभव करेगा। उसे तो जड़ पदार्थ की भांति किसी एक स्थान पर पड़ा रहना ही स्वीकार करना पड़ेगा।

प्रश्न—मुक्त आत्मा किस स्थान पर रहकर मुक्ति का आनन्द प्राप्त करता है ?

उत्तर—अभी तो कह चुके हैं कि मुक्त जीवात्मा सर्वव्यापक परमात्मा के साथ रहकर परमात्मा के रचे हुए असंख्य लोक-लोकान्तरों में घूमता फिरता हुआ परमात्मा के आनन्द का रस लेता रहता है। मुक्ति के आनन्द को भोगने का कोई निश्चित् स्थान नहीं है।

प्रश्न—कुछ लोग तो अपनी धार्मिक पुस्तकों के आधार पर ऐसा कहते हैं कि मुक्ति का स्थान ऊपर आसमान पर है। वहां दूध और शहद की नहरें चल रही हैं। भांति २ के फल और फूल मौजूद हैं। खाने के लिए भांति २ का मांस और पीने के लिए बढ़िया से बढ़िया खालिस शराब रक्खी गई है। मनोरंजन के लिए क्वांरी सुन्दर जवान लड़कियां और लड़के इकट्ठे किए हुए हैं तथा रहने के लिए सोने-चांदी और हीरे जवाहरात से जड़े महल बने हुए हैं। तो क्या यह सब असत्य ही है ?

उत्तर—इन सब बातों में कोई तत्व नहीं है। यदि मुक्ति पा जाने पर भी इसी प्रकार स्थूल शरीरधारियों से जन्नत भरा गया तो फिर वहां भी इस संसार की भांति दुःखों और बीमारियों आदि से छुटकारा न मिलकर शुद्धता, पवित्रता और प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकेगी। यह रेशमी कपड़े, आभूषण, शराब, कबाब, फल-फूल और मनोरंजन आदि तो बहुत से रंगीले और पैसे वाले लोगों को इस संसार में भी प्राप्त हैं, फिर यहां से अधिक वहां कौनसा सामान मिलेगा ? वास्तव में ध्यान पूर्वक देखने से पता चलता है, कि अपना संगठन बनाने और अपने को मनवाने के लिए इस प्रकार जन्नत की सामग्री का ललचाव दिया गया है। अथः इसमें कोई तत्व नहीं है।

प्रश्न—मुक्ति में आनन्द प्राप्ति या जन्नत में मनोरंजन की सामग्री भविष्य में मिलने के लिए कहा जाता है। क्या पता भविष्य में क्या मिलेगा और क्या नहीं ? भविष्य के बारे में कोई कुछ नहीं जानता। इसलिए भविष्य पर ध्यान न रखकर वर्तमान के आराम और सुख को छोड़ना बुद्धिमानी नहीं है।

उत्तर—जो लोग भविष्य का ध्यान न रखकर वर्तमान

की ही चिन्ता करते हैं, उन्हें भविष्य में रोते-पीटते और पछताते ही देखा गया है। वर्तमान का ध्यान भी होना चाहिये और भविष्य की चिन्ता भी करना ही बुद्धिमानी है। भविष्य का ध्यान रखकर विद्यार्थी मन-चित्त लगाकर विद्या ग्रहण करता है। एक किसान सर्दी-गर्मी और बारिश आदि का कष्ट सहन करके फसल बोता है। इसी प्रकार संसार में और भी भविष्य के परिणाम का ध्यान रखकर कार्य किए जाते हैं। वह मनुष्य पशु समान है, जो भविष्य का ध्यान न रखते हुए वर्तमान की ही चेष्टा करता है। जैसे एक पशु बिना भविष्य को विचारे किसी के खेत में उजाड़ा करने लगता है। खेत का स्वामी आकर और उजाड़ा देखकर उसे डंडे से मारपीट करता है। ऐसे ही मूर्ख भी नहीं जानते कि भविष्य में विषयों का परिणाम दुःख होता है।

प्रश्न—जब परमात्मा सर्व व्यापक है, तो वह मन के अन्दर भी विराजमान है और गन्दे पदार्थों आदि में भी मौजूद है। मन में रहने से उसे भी दुःख सुख होता होगा और गन्दे पदार्थों आदि में रमा हुआ होने से उसे बदबू भी अवश्य आती होगी। क्या दुःख-सुख भोगने वाला और गन्दे पदार्थों से घृणा न करने वाला कोई पवित्र और शुद्ध ईश्वर कहला सकता है?

उत्तर—हम बार २ कह चुके हैं कि ब्रह्म अति सूक्ष्म है। स्थूल वस्तु के गुण सूक्ष्म पदार्थ में नहीं आ सकते, नहीं आ सकते। इसलिए परमात्मा को गन्दे पदार्थों की गन्दी बू नहीं आ सकती। जीवात्मा अच्छे या बुरे कर्म स्वयं करता है, इसलिए उसे ही दुःख-सुख होता है। परमात्मा पूर्ण है, उसे किसी वस्तु की इच्छा नहीं होती और न ही कोई वस्तु ऐसी है, जो उसे अप्राप्त हो। परमात्मा तो केवल साक्षी है, उसे दुःख-सुख नहीं होता।

प्रश्न—जीवात्मा स्त्रीलिंग है या पुल्लिंग है।

उत्तर—जीवात्मा न स्त्रीलिंग है और न पुल्लिंग। वरन् जैसे शरीर में यह रहता है उसी के अनुसार यह स्त्रीलिंग या पुल्लिंग कहलाता है और कार्य करने में स्वतन्त्र होता है।

प्रश्न—स्वतन्त्र होने से आपका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर--स्वतन्त्र उसे कहते हैं जिसके आधीन शरीर, प्राण, इन्द्रियां और अन्तःकरण आदि होते हैं। यदि जीवात्मा स्वतन्त्र न हो, तो उसको पाप-पुण्य का फल नहीं मिल सकता।

प्रश्न—जब आप परमात्मा को दयालु, अन्तर्यामी और मनुष्य मात्र का शुभ-चिन्तक तथा हितैषी सिद्ध करते हो, तो वह मनुष्य को पाप कर्म करते समय ही क्यों नहीं रोक देता ? उस समय तो चुप लगा लेता है और फिर गिन २ कर बदले लेता है। यह अच्छा शुभचिन्तक हुआ ?

उत्तर--ईश्वर अशुभ कर्म करने से मनुष्य को अपनी चेतावनी द्वारा रोकता है। कुछ मनुष्य उस चेतावनी को सुनकर पाप कर्म करने से रूक जाते हैं और कुछ वह मनुष्य जिनका अन्तःकरण मैला और मन चलायमान होता है, कुछ परवाह न करके पाप-कर्म कर ही बैठते हैं। पाप-कर्म करने के समय डर, भय और शंका आदि और शुभ कर्म के समय हर्ष और उत्साह आदि होता है। बस वही ईश्वरीय चेतावनी है।

ईश्वर जीवात्मा की स्वतन्त्रता नहीं छीनना चाहता। इसीलिए जबरदस्ती पाप-कर्म करने से रोकना उचित नहीं समझता।

ईश्वर ने अपनी शिक्षा और विधान देकर मनुष्य को यह भली प्रकार बतला दिया है, कि जो मेरे विधान और शिक्षा पर चलेगा उसे सुख और आनन्द मिलेगा और जो मेरी आज्ञा के विरुद्ध कार्य करेगा उसे दुःख और क्लेश अवश्य मिलेगा। इस उदाहरण से और स्पष्ट समझ लीजिए। मान लो आप किसी पाठशाला में अध्यापक हैं, वहां आपका बालक भी पढ़ता है। आपने सभी बालकों को पाठ पढ़ाकर समझा दिये। बालकों की परीक्षा का समय आया, आपने प्रारम्भ में बालकों को यह भी बतला दिया, कि जो बालक सोच समझकर प्रश्नों के सही उत्तर लिखेगा वह पास हो जायेगा और जो सही उत्तर नहीं लिखेगा, वह फेल हो जायेगा। आप निरीक्षण करते फिर रहे हैं। आपने देखा कि आपका बालक अशुद्ध उत्तर लिख रहा है। आपके सामने बालक का हित भी है और आप यह भी चाहते हैं, कि वह उत्तीर्ण हो जाये। यदि आप अपने बालक को सही उत्तर बतलाते हैं, तो आप दोषी हैं। यदि आप बुद्धिमान् हैं तो आप यही सोचेंगे कि यदि बालक फेल होता है तो होजाये। बालक ने अपना पाठ मन चित्त लगाकर याद नहीं किया वह अपने कर्तव्यों से गिर गया। उत्तर बताने में सब जिम्मेदारी आप पर आ जायेगी। इसी प्रकार पाप-कर्म से रोकने पर सारी जिम्मेदारी ईश्वर पर आ जायेगी।

प्रश्न--यह अच्छी बुरी और ऊंच-नीच योनियां कर्म स्वयं देते हैं इसमें ईश्वर का क्या काम ?

उत्तर--कर्म जड़ पदार्थ हैं। इसलिए कर्म स्वयं यथा-योग्य फल नहीं दे सकते। जीवात्मा भी बुरे कर्मों का फल भोगने के लिये नीच और मलिन योनियों में स्वयं जाना पसन्द नहीं करेगा। वरन् जैसे-तैसे बचने का प्रयत्न करेगा। कोई चोर

आदि चोरी या अन्य पाप-कर्म करके स्वयं जेलखाने जाना पसंद नहीं करता, वरन् राज-कर्मचारी ही उसको पकड़कर उसके अपराध का न्याय करके जेलखाने भेजते हैं, ऐसे ही वह महान न्यायाधीश ईश्वर जीवात्मा के अच्छे बुरे फल भोगने के लिए भिन्न २ योनियों में भेजता है। ईश्वर का यह न्याय हर लहमें होता रहता है।

❀ इतिशम् ❀

विश्व धर्म परिचय

यह एक अनोखी पुस्तक है। इस पुस्तक में सभी प्रचलित धर्मों, मजहबों और मत मतान्तरों की ऐतिहासिक खोज की गई है। कोविद्वानों ने बहुत सराहना की है। धर्म प्रेमियों की जानकारी के लिए यह पुस्तक उत्तम है। इस पुस्तक को अवश्य पढ़कर जानकारी प्राप्त कीजिए। इसका मूल्य ४) रुपये है।



पुस्तक मिलने का पताः—

१. हिम्मत राय गुप्त, मोहल्ला रामनगर सहारनपुर।

२. 'शिव-आश्रम' जस्सा राम रोड, हरिद्वार।

525
350
175

